विधाता की भूल

(कहानी संग्रह)

ज्योतीन्द्र नाथ

राजेन्द्र प्रकाशन
भँवरपोखर : पटना—४

प्रथम संस्करण
१९५४

मुद्रक
'इंडियन नेशन' प्रेस

विषय-सूची



दो शब्द

श्री ज्योतीन्द्रनाथ जी का यह दूसरा कहानी-संग्रह है। यह दूसरा संग्रह ही बताता है, पहले संग्रह का स्वागत हुआ, सम्मान हुआ। जब पहली बार ही ठोकर लगती है, लेखक हो या पहलवान—हिम्मत खो बैठता है। आगे बढ़ने की उसमें हिम्मत नहीं होती।

और, जब इस संग्रह की कुछ कहानियाँ पढ़ी, मुझे लगा, लेखक ने जो प्राप्त किया है, वह उसका अधिकार था। यदि उसे यह नहीं मिलता, तो अन्याय होता।

छोटी-छोटी कहानियाँ! घटनाओं के ताने-बाने नहीं। जीवन मे जो साधारण ढंग से घटती रहती है, उन्हें ही सरल, मधुर ढंग से कह दिया गया है। न अस्वाभाविक रूप से नैतिकता के सूत्र निकालने की चेष्टा की गई है, न बनावटी रंगसाजी की तरफ ही अधिक कोशिश है। तो भी कहानियों में उदात्त भावनाएँ हैं; वर्णन-चमत्कार की भी कमी नहीं।

कहानी—हर कलाकृति की तरह—यदि एक भी अच्छी निकल गई, तो अपने रचयिता को अमर कर देती है। गुलेरी जी अपनी एक कहानी से भी अमर है।

यदि प्रेमचंद की तरह कहानियों के लिए असाधारण प्रतिभा हो, फिर क्या कहना? अपने उपन्यासों की अपेक्षा प्रेमचंद जी कहानियों मे अधिक सफल हुए हैं, यह तो अब सबलोगों ने मान लिया है।

किसी भी साहित्य में प्रेमचंद ऐसे लोग कम ही होते है। किन्तु लोगों के हृदय में कहानियों के लिये जो प्यास है, उसे तो शान्त किया ही जाना चाहिए। कहानीकार आते ही रहते है।

जिस तरह प्रेमचंद जी ऐसे लोग एक छोर पर हैं उसी तरह दूसरे छोर पर भी लोग हैं जो लोगों की उस प्यास को पनाले के पानी से शान्त करने की कोशिश करते हैं। ऐसे लोगों की संख्या जितनी कम हो, समाज के लिए उतना ही कल्याण का विषय है। मुझे दुःख है ऐसे लोगों की संख्या बढ़ रही है।

दरअसल ह ' कला के स्रोत को सदा प्रवाहित रखनेवाले वे लोग होते हैं, जो इ दो छोरों के बीच में होते है। मध्यमवर्ग समाज की ही रीढ़ नहीं है, कला का भी आधार यही वर्ग है।

मेरा ख्याल है, ज्योतीन्द्रनाथ जी इस वर्ग के एक श्रेष्ठ प्रतिनिधि हैं।

मेरा कहना है, हिन्दी में लेखकों की संख्या बहुत कम है, ठीक पाठकों की ही तरह। १६ करोड़ लोगों के लिये कितने लेखक चाहिये— जरा कल्पना कीजिये। और कितने है, गिन लीजिये।

जो लेखक हैं भी उनमें अपनी लेखनी के बल पर कमा खाने लायक लोगों की संख्या तो बड़ी ही छोटी है।

एक जगह मैंने लिखा है, कला को खिलौना बनाओ, खुराक नहीं।

मुझे खुशी इस बात की जानकारी से हुई कि ज्योतीन्द्रनाथ जी मेरे इस कथन के एक अच्छे उदाहरण हैं। एक अच्छी जीविका में रह कर मौज में लिखने जा रहे हैं, लिखते जा रहे हैं। इसलिये मुझे पूरी आशा है कि इनकी कला का दिन-दिन विकास होगा, जो अब भी मनोहर है, मुग्धकर है।

इनकी पहली पुस्तक की तरह यह दूसरी पुस्तक भी स्वागत और सम्मान प्राप्त करे इसी शुभकामना के साथ

रामवृक्ष बेनीपुरी

कृष्णाष्टमी २०११

समीक्षात्मक परिचय

कथा के जिन मौलिक तत्त्वों का विज्ञापन-विश्लेषण होता रहा है उनमें मनोरंजकता के लिए महत्त्वपूर्ण स्थान सुरक्षित रखा गया है। आचार्य मम्मट ने जिसे 'कान्तासम्मिततोपदेश' कहा है उसमें भी मनोरंजकता की स्पष्ट धारा है क्योंकि इससे उपदेश (सिद्धान्त-निरूपण अथवा विचार) की सीमाओं को व्यापकता मिलती है। मनोरंजकता अथवा रोचकता की महत्ता इनकी परमता अथवा चरम स्थिति एवं सत्ता में निहित नहीं बल्कि प्रक्रिया की दीप्ति में अन्तर्लीन है क्योंकि इसके द्वारा ही प्रेष्य की प्रेषणीयता को क्षमता मिलती है। रोचकता की सिद्धि ही, अतः, साध्य नहीं अपितु रोचकता-साध्य सिद्धि ही काव्य है।

साहित्य का प्रीतिकर्तृत्व ही कीर्ति की अनश्वर व्याप्ति है, ऐसा मानते समय प्रीति और कीर्ति को जिस व्यापकता की अपेक्षा है उसके लिए युग-भावना और युगमान का आधार चाहिए। घटना-सघटना, चरित्र-निर्माण, परिवेश-योजना, वातावरण-सृष्टि और विचार प्रतिपादन के जिन महत्त्वपूर्ण तत्त्वों की चर्चा आलोचक करता आया है इनमें से केवल एक की ही क्षम-प्रतिष्ठा में कथा-तत्त्वता नियोजित, सन्निहित एवं सीमित नहीं; कथा-तत्त्वता का संरक्षण समन्वयन की प्रभाविष्णु अन्विति में है। आत्मीयता और तज्जन्य समग्रता ही कथा को कथा-रसात्मक बनाने की सामर्थ्य रखती है। किसी कथा की सफलता के लिए केवल इतना ही पर्याप्त नहीं कि उसमें वर्णित घटनाएँ तथ्यात्मक और तथ्याभासक्षम, चरित्र-सृष्टि सहज सम्भाव्य एवं विचार बौद्धिक तथा ग्राह्य हैं बल्कि इसके लिए कथाकार में इतनी क्षमता होनी चाहिए कि उसके विचार और अनुभूतियों में पाठक की आत्मीयता को सजगता एवं स्फूर्ति मिल सके। वह स्वयं जागरू :

और चेतन रहा है, इसका प्रमाण इतना ही होगा चाहिए कि वह वह अपने पाठकों के लिए भी ऐसा ही बनने और होने की वाध्यता उपस्थित कर पाता है। पाठक की अनुगति और अनुगामिता जो प्रेषणीयता देती है उससे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रेषणीयता मैं उसे मानता हूँ जो पाठक और भावक की विवशता बनकर उपस्थित होती है।

साहित्य की उपयोगिता और उपादेयता केवल प्रेष्य अथवा वक्तव्य विषय की उपकारिता की सफल परिणति और क्षम उपलब्धि नही, चमत्कार भावक की सीमाओं की ही दीप्ति हैं जिसके विभिन्न और-सांस्कारिक आधार हैं प्रेष्य की महत्ता प्रेषणीयता की महित सापेक्ष साधना है। कलाकारों के एक दल की आस्था है कि विषय की महनीयता ही कला की महत्तानियोजिका है। अतः श्री मैथिली शरण गुप्त का वक्तव्य है:—

राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है,
कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है।

किन्तु इतना तो स्वीकार करना ही पडेगा कि "राम चरित" के महत्त्व की सहज सम्भावना राम-चरित-गायकों की सम्भावना-परिणति सदा नही बन पायी है। कलाकार का अतः सचेष्ट आत्म-प्रक्षेपण ऐसे व्यक्तित्व का सन्निवेश कर देता है कि भावक की आत्मीयता निबन्ध होकर रमणीयतागम्य नहीं हो पाती।

"विधाता की भूल" के लेखक में आत्मीयता स्थापित करने की रहस्यपूर्ण सामर्थ्य है। मस्तिष्क को झकझोर कर विचार कराने का सचेष्ट आयास श्री ज्योतीन्द्र नाथ की कहानियों में नहीं मिलता और इनकी आत्मीयता में सिद्धान्तों का आत्मीयकरण एवं सैद्धान्तिक आरोप भी नही। इनमें रेखा-चित्रि के सफल कलाकार की वह साधना-मूलक सिद्धि है जिसकी पूर्णता चित्रफलक का विस्तार नहीं बल्कि अपूर्णता में गास ग्रत का आभास है। इनकी कहानियों का महत्त्व वैविध्य अथवा

रगो की विविध योजना में नही बल्कि [illegible] उस समानुभूति एव सहानुभूति में है जिसके कारण इनके पात्र जीवित और जाग्रत तथा उनके परिवेश सजग-सजीव हो उठे हैं। विधाता कब भूल नही करता और भला कब कलाकार उसे इंगित करने मे चूकता ? श्री अयोध्या सिंह हरिऔध ने इसकी भूलों की एक लम्बी-सी तालिका उपस्थित की है। मानव अपने दुर्भाग्य को विधाता की भूल मानता आया है। श्री ज्योतीन्द्र नाथ के विधाता की भूलों की अन्यथावृत्ति और अभिनव प्रक्रिया है यद्यपि सारी भूलें किसी बाह्य विधाता की नही; अन्तर्व्याप्त विधाता की हैं जो अन्तर में निविड़ निबद्ध है, आत्म-संस्कार और सास्कारिक है।

इन कथाओं में संस्कार के भिन्न-भिन्न रूपों को विविध भिन्नाकृति देने का जो प्रयास किया गया है, उसमें कथाकार की आत्मीयता सप्राणता बनकर प्रतिष्ठित हो गई है। संस्कारों की निर्जीव रूढ़िमत्ता और कवि प्रयोगजन्य निर्जीवता इस सप्राणता को क्षुण्ण करने में समर्थ नहीं हो पाई। प्रेमचन्द के पात्रों की विविधता और फैलाव इनके पात्रों में नहीं। श्री ज्योतीन्द्रनाथ ने जो समाज देख पाया है, वह समाज है निम्न मध्यमवर्गीय, जिसकी दीवारें ढह रही हैं, जिसमें औदार्यजन्य व्यापकता थी, किन्तु जो वर्ग कथाशेष हो रहा है अतः उसके सस्कारों की प्रतिष्ठा से जीवन में जो स्फूर्त्ति आ सकती थी, उसकी सम्भावना अब समाप्तप्राय है। इन संस्कारो के लिये आग्रह इन कहानियों में मिलता है, किन्तु इन्हें शोकगीत नहीं कहा जा सकता, आग्रह मोहावेश न बनकर सजग आत्मीयता में परिणत हो सका है, यह कथाकार की सफलता का रहस्य है। विधाता की भूलों के शिकारों में हमारे जाने-सुने पहचाने लोग हैं, इनमें वैशिष्ट्म की वह परिकल्पना नही जिसे समान्य बनाने की अपेक्षा हो बल्कि श्री ज्योतीन्द्र नाथ की तूलिका ने इन सामान्यों को वह वैशिष्टम दिया है कि सामान्य के प्रतिनिधि अथवा प्रतीकमात्र न रह कर वे सामान्य के अन्तराल से उभ-

रसवाले विशेष और स्पष्ट वैशिष्ट्य के वाहक हो गए हैं। श्री ज्योतीन्द्र नाथ की कहानियों की विविधता में जो सांस्कारिक एकरूपता है वह उनके समाज की सीमित व्याप्ति है। श्री ज्योतीन्द्र नाथ की कहानियों ने मुझे जो तोष दिया है, उसका आधार आत्मीयता की स्थापना-क्षमता है। यह रहस्य इनकी सम्भावनाओं का यह महत्त्वपूर्ण संकेतक है और इसमें इनकी कथाओं की साभिप्राय क्षमता निहित है। मुझे श्री ज्योतीन्द्र नाथ की सम्भावनाओं में पूर्ण आस्था एवं उपलब्धियों में सहज विश्वास है।

हिन्दी विभाग
पटना विश्वविद्यालय
२०-९-५४

रामखेलावन पाण्डेय



लेखक

लेखक की ओर से

इस संग्रह की कहानियाँ पिछले कुछ वर्षों के अन्दर लिखी गईं । नारी की ममता, संस्कार और अपराधी के सिवा सभी कहानियाँ विभिन्न मासिक पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हो चुकी हैं । इन कहानियों को पुस्तकाकार प्रकाशित करने की कोई विशेष बलवती इच्छा मेरी नही थी । पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में बिखरी रहने के कारण मेरी कई कहानियाँ अप्राप्य हो गईं और शेष भी धीरे-धीरे मेरे लिये अप्राप्य होती जा रही थीं । इसके अलावा मेरे प्रथम कहानी-संग्रह 'प्रेत की छाया' का जब विद्वानों और पाठकों ने समान उत्साह से स्वागत किया तो कुछ प्रकाशकों की तत्परता देख मैं द्वितीय कहानी-संग्रह के प्रकाशन पर एतराज न कर सका ।

ये कहानियाँ प्रधानतः फुरसत की घड़ियों की उपज है । सरकारी मशीनरी का एक पुर्जा होने के कारण मैं व्यस्त जीवन बिताने का आदी हो गया हूँ । दिन भर के कठिन और शुष्क कार्यक्रम के कारण क्लान्त और शिथिल हो जाने पर फुरसत की घड़ियों में इन कहानियों को लिख कर मैंने काफी दिलचस्पी और मनोरंजन का अनुभव किया है । ऐसा शायद इसलिये संभव हो सका कि मनोरंजन के अधिक प्रचलित और लोकप्रिय तरीकों से मुझे दिलचस्पी नही, वरना शायद इच्छा रहने पर भी कहानियाँ लिखने का समय मुझे नहीं मिलता ।

फुरसत की घड़ियों की उपज का स्पष्ट शब्दों में यही अर्थ हो सकता है कि ये कहानियाँ स्वान्तःसुखाय लिखी गई हैं । लेकिन स्वान्तःसुखाय का मतलब यह तो नही हुआ कि कहानियाँ बिना प्रयोजन के लिखी गईं । मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । आत्मकल्याण के लिये वह जो काम करता है, लोक-कल्याण से उसका विरोध नहीं होना चाहिये ।

अपने सुख के लिये उसे किसी की हत्या करने का या चोरी-डकैती अथवा व्यभिचार करने का अधिकार नहीं। ये असामाजिक कार्य न केवल उसे अधिकारच्युत ही कर देते हैं प्रत्युत उसे दंड का अधिकारी भी बना देते हैं। अतः जिस कला का सृजन कला के लिये किया जाता है उसमें भी ऊपर उठाने की, न कि नीचे गिराने की ताकत रहनी चाहिये। यथार्थ का चित्रण तो कलाकार को करना है ही, पर यथार्थ के चित्रण में संयत और संयमशील रहना नितान्त आवश्यक है।

मैं आदर्शवाद, कट्टरतावाद और प्रचारवाद को एक ही मानता हूँ। मेरे विचार में कलाकार का काम जनता को दृष्टिदान करना है। जनता मे सूक्ष्म रूप से देखने, समझने, ग्रहण करने और स्मरण रखने की शक्ति बहुत कम है। अंगरेजी में एक कहावत भी है कि जनता की स्मृति बहुत अल्पकालिक होती है (Public memory is proverbally short) इस विषय में जनता आँख मूँद कर महान लेखकों, विचारकों एवं राजनैतिक नेताओं के इशारे पर नाचती है। मार्के की बात यह है कि ऐसे अनुकरणीय और आदर्श युग पुरुषों को पहचानने की अद्भुत शक्ति जनता में रहती है। अपनी मुर्दादिली के बावजूद हिन्दी जनता ने तुलसीदास की रचना को कण्ठहार बनाया, प्रेमचंद को सर-माथे पर रखा। अपनी अज्ञता के बावजूद भारतीय जनता ने गाँधी जैसे श्रेष्ठ युगपुरुष को आँखें मूँद कर अपना पथप्रदर्शक मान लिया। ऐसी हालत में कलाकार का उत्तरदायित्व बढ़ जाता है। एक श्रेष्ठ कलाकार के दृष्टिकोण से जनता प्रभावित होती है, उसका अनुकरण करती है। इसलिये कलाकार का काम जनता के सम्मुख वास्तविक जीवन की तस्वीरें ईमानदारी और पक्षपातरहित होकर रखना है। जो जानने लायक, ध्यान देने लायक, याद रखने लायक और विचार करने लायक बातें हैं, उस ओर जनता का ध्यान आकर्षित करना है। शिक्षा प्राप्त करने और शिक्षा देने का सर्वोत्तम साधन भी वास्तविक जीवन की यथार्थ घटनाएँ है। मनुष्य अनुभव से ही सीखता है। जो असावधान हैं वे

अपने अनुभव और अपनी गलतियों से सीखते हैं और जो सावधान और चतुर हैं वे दूसरों के अनुभव से सीखते हैं। पर दूसरों के अनुभव से सीखनेवालों की संख्या कम ही होती है। तभी युगों से इतिहास की पुनरावृत्ति दुःख और तबाही को बढ़ाने के लिये ही होती रहती है।

तो कलाकार का कर्त्तव्य सही दृष्टिकोण से जीवन को देखने की प्रेरणा देना रह जाता है। कलाकार जितना समर्थ रहेगा उसकी प्रेरणा में उतना बल रहेगा। इसके लिये जरूरी है कि सच्चा कलाकार अपने को सारे विश्व का नागरिक समझे न कि सिर्फ एक संस्कृति और एक वाद का समर्थक बन संकुचित दायरे में पड़ जाय। संस्कृति-विशेष या वाद-विशेष का समर्थक कलाकार दुनिया को एक रंगीन चश्मा लगाकर देखता है। फलस्वरूप वह वास्तविक दुनिया नहीं वरन् रंगीन दुनिया देखता है। किसी भी कलाकार के लिये यह संकीर्ण मनोवृत्ति अवांछनीय है। कलाकार को, यदि वह सच्चा कलाकार है, एक राजनैतिक नेता और प्रचारक से कहीं ऊँचा उठना है।

कला और कलाकार की अपनी धारणा के मुताबिक ही अपनी सीमित शक्ति के दायरे में मैंने जीवन की घटनाओं को कहानियों के रूप में चित्रित करने की कोशिश की है। हो सकता है, कुछ कहानियों में चित्रित कटु सत्य पाठकों को नागवार लगे पर हमें तो कटु सत्य को समझना और उसका सामना करना है न कि उससे बच कर उसके बारे में सोचना ही छोड़ कर अपने को झूठा संतोष देना।

अपने प्रयास में मैं कहाँ तक सफल हुआ हूँ इसका निर्णय तो पाठकों और विद्वानों को ही करना है।

ज्योतीन्द्रनाथ

कृष्णाष्टमी २०११

प्रकाशकीय

साहित्य के इस कहानी-युग में अपनी पुस्तकमाला की प्रथम भेंट के रूप में पाठकों के सम्मुख इस कहानी-संग्रह को रखने में हमें अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है।

वास्तव में साहित्य के वर्तमान युग के लिये कहानी-उपन्यास युग सबसे ज्यादा उपयुक्त नाम है। एक जमाना था जब साहित्य के प्रारम्भिक युग में पद्य सर्वश्रेष्ठ माध्यम समझा जाता था। संसार के प्रत्येक देश की प्रारम्भिक महान कृतियाँ पद्य में लिखी गई थी। भारत मे तो वेद की ऋचाओं से व्याकरण और कोष तक के लिये पद्य का ही उपयोग किया जाता था। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि मुद्रण-कला के अभाव में उस वक्त स्मृति के द्वारा ही साहित्यिक कृतियाँ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचती थी। कविताओं को स्मरण रखना निःसंदेह अधिक सहल है।

कविता के युग के बाद नाटकों का युग आया। मध्यम काल में कविता का एकाधिकार जाता रहा और नाटक के माध्यम को देश-विदेश मे कई महान साहित्यिक प्रतिभायोंने अपनाया।

आज के व्यस्त जमाने मे कहानियों की लोकप्रियता बहुत बढ गई है। पाठकों तक अपना दृष्टिकोण पहुँचाने के लिये आज कहानी से बढ कर दूसरा माध्यम नहीं। अंगरेजी, फ्रेंच और रूसी साहित्य में भी कथा साहित्य को ही अधिक श्री, समृद्धि और लोकप्रियता मिली है। भारत मे भी वर्त्तमान युग के श्रेष्ठ प्रतिभाशाली हिन्दी लेखक प्रेमचंद और बगला लेखक शरत्चन्द्र ने कथा के ही माध्यम को अपनाया।

प्रेमचंद के बाद हिन्दी मे कहानियों की लोकप्रियता बढ़ गई और काफी सख्या में कहानियाँ लिखी जाने लगी। लेकिन यह कहने में

प्रकाशकीय

साहित्य के इस कहानी-युग में अपनी पुस्तकमाला की प्रथम भेंट के रूप में पाठकों के सम्मुख इस कहानी-संग्रह को रखने में हमें अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है।

वास्तव में साहित्य के वर्तमान युग के लिये कहानी-उपन्यास युग सबसे ज्यादा उपयुक्त नाम है। एक जमाना था जब साहित्य के प्रारम्भिक युग में पद्य सर्वश्रेष्ठ माध्यम समझा जाता था। संसार के प्रत्येक देश की प्रारम्भिक महान कृतियाँ पद्य में लिखी गई थीं। भारत में तो वेद की ऋचाओं से व्याकरण और कोष तक के लिये पद्य का ही उपयोग किया जाता था। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि मुद्रण-कला के अभाव में उस वक्त स्मृति के द्वारा ही साहित्यिक कृतियाँ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचती थी। कविताओं को स्मरण रखना निःसंदेह अधिक सहल है।

कविता के युग के बाद नाटकों का युग आया। मध्यम काल में कविता का एकाधिकार जाता रहा और नाटक के माध्यम को देश-विदेश में कई महान साहित्यिक प्रतिभायोंने अपनाया।

आज के व्यस्त जमाने में कहानियों की लोकप्रियता बहुत बढ़ गई है। पाठकों तक अपना दृष्टिकोण पहुंचाने के लिये आज कहानी से बढ कर दूसरा माध्यम नहीं। अंगरेजी, फ्रेंच और रूसी साहित्य में भी कथा साहित्य को ही अधिक श्री, समृद्धि और लोकप्रियता मिली है। भारत में भी वर्त्तमान युग के श्रेष्ठ प्रतिभाशाली हिन्दी लेखक प्रेमचंद और बंगला लेखक शरत्चन्द्र ने कथा के ही माध्यम को अपनाया।

प्रेमचंद के बाद हिन्दी में कहानियों की लोकप्रियता बढ़ गई और काफी सख्या में कहानियाँ लिखी जाने लगीं। लेकिन यह कहने मे

इस तनिक भी सकोच नहीं कि प्रेमचद १९३६ में हिन्दी कथा साहित्य को जिस स्थल पर छोड़ गये थे आज १८ वर्षों में हम उस स्थल से एक कदम भी आगे नहीं बढ़ पाये हैं। जिस जमाने में भारतीय साहित्याकाश में रवीन्द्र और शरत्चन्द्र चमक रहे थे, प्रेमचन्द ने हिन्दी कथासाहित्य को भारत की अन्य भाषाओं के कथासाहित्य के समकक्ष ला खड़ा किया था लेकिन आज उर्दू के कृष्णचंद, रामानन्द सागर, बंगला के विभूतिभूषण मुकर्जी, वनफूल, शचीनाथ, शैलजानन्द, ताराशंकर और अंगरेजी के मुल्कराज आनन्द, भवानी भट्टाचार्य, और ख्वाजा अहमद अब्बास आदि के मुकाबले में हम हिन्दी के कथासाहित्य को पिछड़ा हुआ पाते हैं। जिस जैनेन्द्र पर हिन्दी साहित्य ने कुछ भरोसा कर रखा था उनकी सृजन शक्ति कथासाहित्य के क्षेत्र में पिछले दस वर्षों में नगण्य रही है। यशपाल में प्रतिभा अवश्य है लेकिन उनके अन्दर के साहित्यिक को उनके अदर के राजनीतिज्ञ ने दबा रखा है। यह एक दुर्भाग्य की बात है। अश्क कहानीकार की अपेक्षा नाटककार के रूप में अधिक चमक रहे हैं। हिन्दी के शेष कहानीकारों में कोई असाधारणता नहीं है।

सबसे अधिक निराशा की बात तो यह है कि हिन्दी के कहानीकारों ने अपने समय की परिस्थितियों और समस्याओं में तनिक भी दिलचस्पी नहीं ली। भावनाओं से हीन, मुर्दादिल की तरह, युगान्तरकारी घटनाओं को वे तटस्थ की तरह देखते रहे। इधर हमारा देश विषम परिस्थितियों से गुजरा है। युद्ध के कारण उत्पन्न विषमताएँ, बंगाल का अकाल, सन् ४२ का आन्दोलन, हिन्दू-मुसलिम हत्याकांड, स्वतंत्रा प्राप्ति आदि ऐसी घटनाएँ हैं जिसने किसी न किसी रूप से प्रत्येक भारतीय के जीवनक्रम पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है। बिहार, उत्तर प्रदेश, पंजाब आदि हिन्दी भाषाभाषी प्रदेशों पर उन घटनाओं की सबसे गहरी प्रतिक्रियाएँ हुई थीं। लेकिन जहाँ अंगरेजी में बंगाल के अकाल, युद्ध का प्रभाव, और ४२ के आन्दोलन पर पटना मे शिक्षा-प्राप्त भवानी भट्टाचार्य कृत Too Many Hungers (कजली), बंगला में ४२ के आन्दोलन पर पूर्णिया-निवासी शचीनाथ भादुरी कृत

जागरी' और उर्दू में दंगों पर रामानन्द सागर कृत "और इन्सान मर गया' जैसी महान कृतियाँ लिखी गयीं वहाँ हिन्दी के कथाकार अपने व्यक्तिगत और पारिवारिक समस्याओं में उलझे रहे। इस तरह की भावनाशून्यता (Lack of sensation) किसी भी साहित्य के लिये बहुत दुर्भाग्य और अमंगल का लक्षण है। हम यह नहीं कहते कि पारिवारिक और व्यक्तिगत समस्याओं का महत्त्व नहीं, पर जिन घटनाओं ने सारे देश को हिला दिया उनकी ओर हम उपेक्षा की नजर से देखेंगे तो हमारा साहित्य स्वयं उपेक्षा का पात्र बन जायगा और अन्य भाषा-भाषी हमें नपुंसक और सृजनशक्ति से हीन समझने लगेंगे। शेखर, गिरती दीवारें, संन्यासी, रूपान्तर आदि अपने ढंग की अच्छी किताबें हैं लेकिन हमें मानना पड़ेगा कि कजली, जागरी और इन्सान मर गया, अन्नदाता, पेशावर एक्सप्रेस की कोटि की रचनाएँ हिन्दी में नहीं लिखी गईं। यशपाल कुएँ के मेढक की तरह क्रान्तिकारियों की जीवनगाथा और कामरेडों की महिमा पर उपन्यास लिख संतोष प्राप्त करते रहे। इतने अर्से के बाद जैनेन्द्र ने लिखा भी तो क्रान्तिकारियों के उसी पुराने पचड़े को ले बैठे और वह भी बिना किसी विशेष चमत्कार के।

जब तक प्रेमचंद जीवित थे हमें उनकी कृतियों में तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलनों और विचार-संघर्षों का बहुत ही चमत्कारपूर्ण चित्रण मिलता रहा। उनके बाद इस कोटि की बहुत कम रचनाएँ हिन्दी में लिखी गईं। भगवतीचरण वर्मा कृत 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' इस प्रकार की एक सुन्दर रचना थी, हालाँकि रांगेयराघव कृत 'सीधे सादे रास्ते' की भूमिका में डा० रामविलास शर्मा इसलिये बहुत कुपित थे कि भगवतीचरण वर्मा ने राष्ट्रीय आन्दोलन को (अथवा कामरेडों को?) डा० रामविलास शर्मा की रुचि के अनुसार गौरवान्वित नहीं किया। हिन्दी के अनेकों युवक कलाकारों की तरह डा० रामविलास का दृष्टिकोण एकांगी है। जब गाँधीजी जीवित थे और उनकी आजादी की लड़ाई चल ही रही थी इस महान डाक्टर ने अहिंसात्मक प्रयोग के रोग को पहचान लिया था और रोग की विभीषिका की आशंका

से उनका दयालु हृदय क्षुब्ध और दुखी था। अहिंसा का प्रथम प्रयोग, द्वितीय प्रयोग, तृतीय प्रयोग आदि लेखों के द्वारा इन महानुभाव ने चाँद पर थूकने की कोशिश की थी। साम्यवाद के कट्टरपंथी पिट्ठुओं की तरह डा० रामविलास में भी सब से उत्तम गुण यह है कि उनकी वाह्यदृष्टि और अन्तर्दृष्टि बहुत तीव्र है। उस तीव्र दृष्टि से देखने पर ऐसे सभी मनुष्य और सभी विचारधाराएँ जो मार्क्स, लेनिन या स्टालिन के अंधभक्त नहीं हैं पूँजीपतियों के पिट्ठू मालूम पड़ते हैं। डा० रामविलास के पास भी सभी मसलों को समझने-बूझने के लिये बस यही एक फार्मूला है। जिस तरह अमृतधारा सभी रोगो की एक दवा है यह फार्मूला भी किसी भी गैर कम्युनिस्ट विचारधारा को चाहे—वह गांधीवाद हो या भूदान-यज्ञ हो—गर्हित और घृणास्पद सिद्ध करने का रामबाण तरीका है। उसी फार्मूला का प्रयोग कर डा० रामविलास ने हंस में प्रकाशित उन लेखो में सिद्ध कर दिया था कि गांधीजी का प्रत्येक आन्दोलन घनश्यामदास बिड़ला और उनके गुट के लोगों के लाभ के लिये किया गया था और देश उससे एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा, बल्कि हर आन्दोलन के बाद पीछे ही हटता गया। दुर्भाग्यवश डा० रामविलास का मूल्यांकन सही नहीं हुआ। गांधीजी का प्रभाव बढ़ता ही गया—जनता ने पूँजीपतियो का पिट्ठू कह उनकी भर्त्सना नहीं की और अन्त में भारत स्वतन्त्र हो गया। काश, भारत कामरेडों के किसी करिश्मे से आजाद होता! शायद तब डा० रामविलास का प्रगतिशील गुट खुशी और संतोष से नाचने लगता। पर संयोगवश उस वक्त रूस अंग्रेजों का मित्र था और भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का समर्थन करना तो अलग इससे सहानुभूति प्रकट करना भी उसने अनावश्यक समझा। हमारे महान् प्रगतिशील विचारक डा० रामविलास, जिन्हें शायद मार्क्स और स्टालिन पर लिखी कविताएँ बहुत मधुर लगती हैं, सोहनलाल द्विवेदी पर इसलिये कुपित थे कि उन्होंने गाँधीजी पर कई कविताएँ लिखी थीं। उन्हें बापू का छौनाकी उपाधि देकर शायद डा० रामविलास स्वयं ही अपनी बुद्धि

के चमत्कार पर मुग्ध हो गये थे पर हमें पूर्ण विश्वास है कि यह मामूली सी बात डा० रामविलास की समझ में नहीं आयगी कि किसी भी सभ्य और सुसंस्कृत भारतीय के लिये विदेशी कम्युनिस्ट अथवा गैरकम्यूनिस्ट सत्ताओं और दलों के कोल्हू के बैलकी बनिस्पत बापू का छौना बनना कहीं अधिक सौभाग्य और गौरव की बात है। बापू के छौनों की आँखें खुली रहती हैं, रास्ता एक है या अनेक, सीधे हैं या टेढ़ेमेढ़े यह वे देख सकते हैं। लेकिन कोल्हू के बैल की आँखें बँधी रहती हैं। उसका शरीर और बुद्धि गिरवी रखी रहती है और एक लीक पर चुपचाप उसे चलते रहना है। उसे तो सिर्फ एक ही रास्ते का ज्ञान है जो अवश्य ही उसे सीधा साधा दिखलाई पड़ेगा।

इस लम्बे विषयान्तर से मेरा मतलब यह दिखलाना है कि जिस तरह हिन्दी कथासाहित्य की गति कुंठित, संकीर्ण और एकांगी हो गई है उसी तरह हिन्दी में तरुण आलोचकों का एक ऐसा गुट हो गया है जिनकी मनोवृत्ति संकीर्ण, पक्षपातपूर्ण और एकांगी हो गयी है। उनका फार्मूला एक ही है—किस हद तक रचना ने एक विशेष वाद को गौरवान्वित किया है। अगर रचना में यह गुण नहीं तो वह अवश्य ही प्रतिक्रियावादी और बुर्जुआ मनोवृत्ति का है। आलोचना का यह गर्हित दृष्टिकोण साहित्य के प्रगति के लिये घातक है।

स्पष्ट है कि हिन्दी कथासाहित्य का सृजनात्मक और आलोचनात्मक दोनों अंगों का एक भाग अपंग और कुत्सित हो गया है।

आज के जाग्रत और साहित्य के विकास में रुचि रखनेवाले प्रकाशकों और संपादकों का कर्त्तव्य है कि साहित्य के इन दो अंगों के विकास की ओर प्रयत्नशील हों। प्रत्येक वर्ष में लिखे गये कथासाहित्य के सही मूल्यांकन के लिये यथेष्ट मात्रा में आलोचनात्मक साहित्य प्रकाशकों और पत्रिकाओं को प्रकाशित करना चाहिये। वर्ष की दस या बारह श्रेष्ठ रचनाओं के सम्बन्ध में प्रत्येक पत्रिका को पाठकों से मतदान लेना

चाहिये और श्रेष्ठ मानी गयी रचनाओं को पुरस्कृत करना चाहिये। यही हमारी साहित्यिक जागृति और स्फूर्ति का लक्षण होगा।

हमारी प्रथम भेंट 'विधाता की भूल' ज्योतीन्द्रनाथ की १५ कहानियों का संग्रह है। इनकी नौ कहानियों का प्रथम संग्रह 'प्रेत की छाया' अभी तीन महीने पहले प्रकाशित हुआ। पाठकों और आलोचकों ने समान रूप से इसका स्वागत किया है। पुस्तक की लोकप्रियता दिनोदिन बढ़ती जा रही है। यूँ तो ज्योतीन्द्रनाथ अपने विद्यार्थी जीवन से ही लिखते आ रहे हैं लेकिन कहानियाँ अधिकतर उन्होंने पिछले दस वर्षों में लिखी हैं। इस अवधि में उनकी कहानी-कला काफी परिमार्जित हो गई है! जहाँ तक भाषा, भाव, चरित्र-चित्रण मनोवैज्ञानिकता, स्वाभाविकता रोचकता आदि का प्रश्न है ज्योतीन्द्रनाथ की कहानियाँ काफी सफल हैं। हमारी ऊपर की कसौटी के मुताबिक तो इस वक्त हिन्दी कथासाहित्य में सिर्फ मध्यम श्रेणी के लेखक लिख रहे हैं। जैसा कि श्री रामवृक्ष बेनीपुरी ने अपने 'दो शब्द' में लिखा है ज्योतीन्द्रनाथ इस वर्ग के एक श्रेष्ठ प्रतिनिधि हैं। कला को खुराक नहीं बल्कि खिलौना बनाने वाले इस कलाकार की साहित्यिक साधना का तो यह प्रारम्भिक काल है। अभी तो उनकी कला को और मँजने की गुंजाइश है और हम उम्मीद करते हैं कि निकट भविष्य में हम इनकी और भी उत्तम रचनाएँ पाठकों की भेंट कर सकेंगे।

पटना, १२-९-५४ **प्रकाशक**

—— o ——

विधाता की भूल

विधाता भी कभी-कभी ऐसी गलती कर देता है कि पता नहीं चलता कि उसने जान-बूझकर ऐसा मजाक के तौर पर किया है या सचमुच उससे गलती ही हो गई। चन्द्रदेव बाबू के यहाँ पुत्र-रूप में धर्मदेव का जन्म लेना एक ऐसी ही घटना थी। जिस दिन धर्मदेव का जन्म हुआ था उसी दिन उनके पड़ोसी हरिबाबू को एक लड़की हुई थी, जो पैदा होने के चार घंटे बाद ही मर गई। यथार्थ में उस लड़की को चन्द्रदेव के यहां पैदा होना चाहिए था, और धर्मदेव को हरिबाबू के यहाँ जन्म लेना चाहिए था।

हरि बाबू के विशाल भवन के सामने चन्द्रदेव की क्षुद्र कुटिया झेंप झुकी जा रही थी। चन्द्रदेव बाबू सुबह पाँच बजे ही उठते थे। मुँह-हाथ धो, बिना कुछ खाये-पिये कागजों की फाइलें ले जुट जाते। जब दस बजने को होता, तो हड़बड़ाकर उठते, पाँच मिनट में जल्दी-जल्दी पेट में कुछ डाल लेते और बगल में फाइलों का बोझ दबा कर झपटते हुए कचहरी चले जाते। सात घंटे तक कोल्हू के बैल की तरह काम कर और साहबों की झिड़कियाँ तथा फटकारें सुन, उदास और सूखा मुख लिये जब पाँच बजे वह घर वापस आते, तो आध दर्जन बच्चे चिल्ल-पों से और पत्नी उलाहनों से उनका स्वागत करती। किसी तरह सबको रफा-दफा कर, कुछ खा-पी फिर दस बजे रात तक

धीमी रोशनी में आँख फोड़ते रहते । इतना होने पर भी घर का खर्च मुश्किल से चलता और मकान की साल में एक दफा मरम्मत भी नहीं हो पाती । सयानी लड़कियों की शादी की चिन्ता अलग सता रही थी और बच्चों की पढ़ाई का खर्च निकलना भी मुश्किल हो रहा था ।

बगल में हरि बाबू रहते थे । आठ बजे सोकर उठते, दस बजे तक मुह-हाथ धोकर तैयार होते, फिर चाय-पानी होता । एक बजे लञ्च, उसके बाद आराम, पाँच बजे नाश्ता, फिर सैर, बारह-एक बजे वापस लौटना, दो बजे सोना । फिर भी उनके पास पैसे की कमी न थी । तीन-मंजिला मकान शान से सिर उठाये मानो सारे मुहल्ले को चुनौती दे रहा था । नौकर-चाकरों से मकान भरा रहता; काम कुछ नहीं, पैसे बहुत, फिर मौज करने के सिवा उनको और काम ही क्या था ?

चौंतीस वर्ष की उम्र में जब चन्द्रदेव बाबू को यह सातवीं संतान पैदा हुई, तो उनमें इतना उत्साह शेष न रह गया था कि कुछ आनन्द उत्सव मनाते । हाँ, एक बात का सन्तोष उन्हें जरूर हुआ कि उनके लड़की न हुई । उनकी संतानों में पहली तीन लड़कियाँ थी और शेष तीन पुत्र थे । पहली लड़की सयानी हो रही थी, और वह ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती, चन्द्रदेव बाबू की परेशानी भी बढ़ती जाती । तीन पुत्रों की शिक्षा-दीक्षा और लालन-पालन का बोझ ही उन्हें जब अधिक मालूम पड़ता था, तब चौथे के आगमन से यदि उन्हें विशेष खुशी न हुई, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है ।

पर, इस चौथे पुत्र को, जिसका नाम धर्मदेव रखा गया, भगवान ने शायद हरि बाबू के यहाँ उत्पन्न करने के लिये बनाया था । हरि बाबू के यहाँ जरूरत और आराम की चीजों का अम्बार लगा था और संतान-उत्पत्ति के लिये पूजा-पाठ कराने में न जाने कितनी रकम वे हर मास पण्डितों को दान दे देते थे । संतान की उन्हें बड़ी चाह थी,

अच्छा होता कि यदि इन्ही हरिबाबू के यहाँ धर्मदेव पैदा होता, क्योंकि उसने रईसों का-सा स्वभाव पाया था। अपने सभी भाइयो में वह अधिक सुन्दर और शौकीन था। वह ज्यों-ज्यों बढता गया, उसका शौक भी बढता गया; पर उसका प्रत्येक शौक चन्द्रदेव बाबू की छाती पर वज्र की तरह चोट करता। जिस शौक को पूरा कर हरिबाबू कृत-कृत्य हो जाते, उस शौक की उपस्थिति मात्र से चन्द्रदेव बाबू तिलमिला जाते। धर्मदेव को पढने-लिखने का शौक नही था। न उसमे मेहनत करने का माद्दा था। उसे तो हरि बाबू के यहाँ पैदा होना चाहिए था। उसके गुण ही ऐसे थे।

साधारण मनुष्यों से जब भूल हो जाती है, तो उसका सुधार किया जा सकता है; पर विधाता तो असाधारण है, उसकी भूल को सुधारने की शक्ति ही किसमे है? वह जो चाहता है करता है।

धर्मदेव, चन्द्रदेव को तबाह करता हुआ बढ़ता गया। यहाँ तक कि वह युवक हो गया। किसी तरह उसने मैट्रिक पास किया और कालेज में आ शौकीन लड़कों के गुट में पड़ गया। वह पढ़ने मे जी चुराता था, पर बातूनी एक नम्बर का था। चन्द्रदेव की अवस्था पचपन के करीब हुई होगी। पर उनका शरीर थक गया था। तीनो लडकियों की शादी किसी तरह उन्होंने कर दी थी। चार लडकों मे दो सयाने हो होकर मर गये। इससे उन्हें बहुत सदमा हुआ। जब पालपोस कर उन लोगों को इस लायक बनाया कि कुछ मदद कर सकें, तब वे दगा देकर चले गये। वह दुर्भाग्य का ही लक्षण था। एक मैट्रिक पास कर उन्ही की कचहरी में इसी साल तीस रुपये पर क्लर्क हो गया था। चन्द्रदेव बाबू इस साल पेंशन लेनेवाले थे और बहुत कोशिश कर, अपने अफसरों की खुशामद कर लड़के को वह कचहरी मे दाखिल कर सके। रहा धर्मदेव! उसमें रईसी भरी थी। उसे तो बस रुपये

चाहिये, जिन्हें वह खर्च करे। काम करने में उसका मन नहीं लगता था और सडकों का चक्कर लगाना उसे बहुत भला लगता था।

(२)

हरि बाबू लगभग पैंतासिल वर्ष के हो चुके थे। बहुत से लोगों के बारे में कहा जाता है कि जैसे-जैसे उनकी उम्र बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे ससार के प्रति वे अधिकाधिक आसक्त होते जाते हैं। यह बात हरिबाबू के सम्बन्ध में भी थी। वे निराश हो गये थे। वे समझ गये थे कि पुत्र उनकी किस्मत में ही नहीं लिखा, अतः अब धन के प्रति उनका मोह और भी घट गया। शराब कबाब और शबाब का बाजार पहले से भी ज्यादा गर्म रहने लगा। डेरे पर तवायफें आती, महफिल जमती, तबले ठनकते, रागिनी और सुर उठता, और दोनो के साथ जश्न मनाया जाता। गया शहर ऐसे रईसों के लिए बहुत अनुकूल जगह है। शायद वहाँ के वातावरण मे ही रसिकता और सरसता वर्तमान है।

इधर धर्मदेव को हरिबाबू से विशेष रश्क हो गया। उसे उन पर ईर्ष्या होती और बहुधा भगवान को कोसता कि उसे भी उनसे वैसा ही क्यों न बनाया। दोनो के स्वभाव में आश्चर्यजनक समानता थी, धर्मदेव के पास रुपये न थे।

उस दिन हरिबाबू के यहाँ किसी मशहूर तवायफ का मुजरा था। दालान मे तबले की आवाज आ रही थी। धर्मदेव अपनी कोठरी म उदास बैठा था। दूसरे का धन देख उसे अपनी गरीबी याद आ जाती और वह दुखी हो उठता, अपने को कोसता, अपने माँ-बाप को कोसता और फिर ईश्वर को दोष देता।

अन्त में उससे रहा न गया। उसने कपड़े बदले। महीन धोती पहिनी, रेशम का धुला कुरता पहिना और सिर पर पल्ले की टोपी रखी। सज-धज कर निकला, सामने की एक दूकान से एक पैसे के

पान लिये और चबाता हुआ धीरे-धीरे चल कर दालान के सामने खड़ा हो गया। हरि बाबू की नजर उस पर पड़ी, बड़े प्रेम से पुकारा—"अरे धर्मदेव, आओ, आओ, बाहर क्यों खड़े हो ?"

धर्मदेव कुछ हिचका। हरिबाबू से उसकी कई दफा बातें हुई थी, पर कभी महफिल में वह उनके साथ नहीं बैठा था।

"आओ धर्मदेव", हरिबाबू ने फिर कहा और अपने नजदीक की जगह बताते हुए बोले, "आओ, यहाँ बैठो। यह शर्म करने की जगह नही है। अब तुम जवान हुए। क्यों ?" और वह हँस दिये।

"जी", धर्मदेव ने कहा और सभी की आँखें इस सुन्दर, सजीले युवक की ओर फिर गई।

हरिबाबू ने सगर्व उसकी ओर देख कर कहा—"इसे मै बहुत मानता हूँ। क्यों धर्मदेव ?"

धर्मदेव ने सिर झुका दिया। कुछ बोला नहीं।

(३)

उस दिन जिस वेश्या का गाना हरिबाबू के यहाँ था, उसका नाम हसीना था। उसकी उम्र ढल गयी थी और सौंदर्य में भी कुछ फीकापन आ गया था; पर वह गाती खूब थी, और चूंकि हरि बाबू से पुराना सरोकार था, अतः अब भी उसे कभी-कभी बुला लिया जाता था।

हसीना की एक लड़की थी। नाम था शाहजादी। बला की खूबसूरत थी, उस पर वेश्या की लडकी, जिसका काम ही है सौंदर्य का प्रदर्शन और सौंदर्य का विकास। रूप बेच कर पैसा कमाना यों बहुत आसान मालूम होता है, पर अगर कोई किसीसे पूछे कि वह मौत कैसी होती है, जिसमें शरीर के अंगो में असह्य जलन होती है, मांस गलता है और तब वह अंश गल कर गिर जाता है। पीड़ा से गरीब

प्राणी चीखता है, चिल्लाता है, ईश्वर से बार-बार दुआ करता है कि प्राण निकल जायँ; पर पापी प्राण नही निकलते । मेरा दावा है कि पाप को पेशा बनानेवाला जीव कभी सुखी नही रहता । पाप का पेशा वही है, जिससे स्वयं को थोड़ा-बहुत लाभ हो, पर एक बहुत बड़ी संख्या को नुकसान होता हो । वेश्याओं और अभिनेत्रियों के बारे में लोग भले ही कहें कि वे अनगिनत लोगों का मनोरंजन करती हैं, उनका दिल बहलाती हैं, पर वास्तव में वे अनगिनत लोगों के जीवन को केन्द्र-च्युत कर देती हैं; उन्हे चञ्चल बनाती हैं; वासना का मार्ग दिखलाती हैं और अनेक के घर बरबाद कर देती हैं; और उनका अन्त भी बुरा ही होता है ।

शाहजादी के मन में ऐसे ही विचार उठते थे । अभी उसका सोलहवाँ पूरा नहीं हुआ था । वेश्या-वृत्ति अभी उसने शुरू नही की थी । उसकी नाक में नथ पडी थी । हसीना की अभिलाषा थी कि कोई मालदार आसामी फँसे, तो यह नथ उतरे । अभी उसे नाचने-गाने की शिक्षा दी जा रही थी । बडे-बड़े रईसों के यहाँ जाती, तो कभी कभी हसीना उसे साथ ले जाती, जिससे उसका विज्ञापन हो । पर शाहजादी ने दूसरा ही स्वभाव पाया था । इस पेशे से उसे घृणा थी। पर वह जानती थी कि माँ उसे छोड़ेगी नही, फिर उसके सामने दूसरा चारा भी नही । वह घंटों उदास बैठी सोचा करती । उसकी दशा उस बकरे के समान थी, जिसे बलि पर चढाने के लिये सजा-धजा कर देवी के मन्दिर ले जाया जाता है ।

हसीना को शाहाजादी के स्वभाव का पता था । वह उसे समझाया करती; कहती—"एक मर्दुये की बाँदी बन उम्र गुजारने में क्या लुत्फ है ? आजाद रहो, तितली की तरह घूमो । रुपये रहना चाहिये, फिर आदमी जो चाहे कर सकता है ।"

शाहजादी माँ से कभी बहस नहीं करती। चुपचाप उनकी बातें सुन लेती, फिर एकान्त में जी भर कर रोया करती। हसीना यह सब देखती और सोचती—'सभी छोकरियाँ ऐसा ही करती हैं ! मैं खुद चार रोज तक बिना खाये पीये गम में पड़ी रही थी। धीरे-धीरे सब ठीक हो जाती हैं। इन्सान का स्वभाव ही तो ठहरा।'

हरि बाबू के यहाँ हसीना जब जाती थी, तो शाहजादी को भी साथ ले लेती थी। वहीं कई दफा धर्मदेव की नजर उस पर पड़ी। वह उस पर मुग्ध हो गया। जब से उसे देखा, उसकी सूरत धर्मदेव की आँखों के सामने घूमती रहती। उसकी नाक में अभी तक नथ है। कैसी भोली, शांत और निर्दोष लगती है। उसकी उम्र आ गयी है। उसकी माँ अब सौदा करेगी। मैं उसे लूंगा, मैं, हाँ मैं धर्मदेव। पर छोकरी है खूबसूरत और उसकी कीमत काफी लगेगी। काफी रुपये चाहिये—कम से कम पाँच सौ। इन्तजाम करना ही होगा।

और धर्मदेव ने निश्चय कर लिया—चाहे कुछ हो, रुपये वह जरूर इकट्ठा करेगा। शाहजादी का चेहरा याद कर उसे और प्रेरणा मिलती। उस प्रेरणा में बल था और मनुष्य को क्रियाशील करने की ताकत थी। यह उसकी महत्वाकांक्षा थी। महत्वाकांक्षा और प्रेरणा दोनों के मिश्रण से मनुष्य क्रियाशील बन जाता है। धर्मदेव क्रियाशील बन गया।

धर्मदेव को, जिसके बाप को तीस रुपये मासिक पेंशन मिलती है, महताब को देने के लिए पाँच सौ रुपये चाहिये। वह भी एक दो महीने के अन्दर। धर्मदेव ने अपना प्रयत्न शुरू किया। उसके बहनोई आये हुए थे। एक रोज उनकी घड़ी अकस्मात् गुम हो गई। बड़ी बहिन का सोने का कंगन एक रोज खो गया। गरीब ने बड़ी मुश्किल से इसे बनवाया था, इसके खो जाने से वह पागल-सी हो गई। बड़े

भाई ने एक कीमती कलम खरीदी थी। पहले तो उसका दाम दस-पन्द्रह रुपया था, पर अब बढ़कर अस्सी रुपये हो गया था। एक रोज वह कलम भी गुम हो गई। चन्द्रदेव की पेंशन जिस रोज आयी, उसी रोज गुम हो गयी!

धर्मदेव इधर पढ़ने में बहुत रुचि दिखाता। दिन भर कमरे में किताब लिये बैठा रहता। जल में रह कर भी जिस तरह कमल जल से अलग रहता है, उसी तरह घर में रह कर और इन कार्रवाइयों में इतना घनिष्ठ सम्बन्ध रख कर भी, वह अपने को इन बातों से अलग दिखाता था। महीने का अन्त होते-होते धर्मदेव की अपनी और मित्रों की कई पाठ्यपुस्तकें सेकेंड हैंड बुक शॉप में चली गई। दो महीना खतम होते-होते धर्मदेव के पास पाँच सौ रुपये हो गये।

एक रोज धर्मदेव ने फिर महीन धोती पहिनी, रेशमी कुरता पहिना, एक शीशी इत्र बदन पर लगाया और चौक को चल दिया। शाम को तो ऐसा मालूम होता है कि गया के सभी वयस्क पुरुष घर छोड़, सड़कों पर निकल आते हैं। धर्मदेव का दिल आज बाँसों उछल रहा था। हसीना के कोठे के निकट जा, वह रुक गया। तम्बोली के यहाँ से दो पैसे का पान खरीद दाँतों में दबाया और बिल्ली की तरह चारों ओर देख, वह कोठे पर चढ़ गया!

हसीना ने बड़े तपाक से उसका स्वागत किया, आदर से बैठाया और बोली—"इस लौंडी की खुशकिस्मती है कि आप जैसे राजा बाबू यहाँ तशरीफ लाये!"

धर्मदेव मन ही मन बहुत कुछ सोच कर आया था। क्या बातें करेगा, कैसे बातें करेगा और किस तरह खास बात पर आयगा? पर एकाएक उसका दिमाग जैसे खाली हो गया और वह भूल गया कि वह कहाँ है और उसे क्या कहना है? पर उसने अपने को सँभाल

लिया। वह नम्बरी बातूनी और गप्पी था; बोला—"मैं बहुत दिनों से आने की सोच रहा था, पर हिम्मत न पड़ती थी।"

"अपना ही घर समझिये मेरे सरकार! शर्म की कौन-सी बात है? आप लोग खानदानी रईस हैं।"

"हाँ, अब तो आया ही करूँगा।"

"जरूर आइये, मैं तो आपको सिर आँखों पर रखूंगी।"

देर तक दोनों बातें करते रहे। धर्मदेव ने बताया कि वह हरि-बाबू का भानजा है और सारी रकम उसे ही मिलने वाली है। मामा उसे बहुत मानते हैं, किसी तरह की तकलीफ नहीं होने देते। उसने हसीना पर अपना रोब जमाया और अपने बड़प्पन का सिक्का भी जमा दिया। जब यह सब हो गया, तब वह मुख्य बात पर आया। उसने शाहजादी की चर्चा छेड़ी और अपना मन्शा प्रकट कर दिया। धर्मदेव का दिल काँपने लगा और हसीना का उत्तर सुनने के लिए वह उत्सुक हो गया।

"सरकार से क्या छिपा है? शाहजादी तो परी है। उसके लिए कितने आये। अभी पर साल एक राजा आये थे। अपनी मर्जी से दो हजार दे रहे थे। मैंने साफ इनकार कर दिया। उस वक्त बच्ची ही तो थी।"

धर्मदेव ने एक ही दफा सञ्चित रकम की डाक बोल दी। बुढ़िया भीतर तो बाग-बाग हो गई, पर ऊपर से मुँह बिचका दिया. फिर अपने चेहरे को ऐसा बना दिया जैसे किसी बड़े धर्म-संकट में पड़ गई हो। फिर कुछ मुस्कुरा कर बोली—"अपने राजा बाबू की हुक्म उदूली कैसे कर सकती हूँ।"

सौदा तय हो गया। दूसरे दिन शाम को आने को कह धर्मदेव चला गया।

धर्मदेव के चले जाने के बाद हमीना ने शाहज़ादी को बुलाया और उसकी ठुड्डी पकड़ कर बोली—"तुम्हारी बड़ी किस्मत है बेटी ! पाँच सौ रुपये अपने मुँह से बोल गया है। खुद कैसा खूबसूरत नौजवान है। कल को तय हुआ है।"

शाहज़ादी पर जैसे बिजली गिरी हो। उसके चेहरे पर मुर्दनी छा गई और वह भय से काँप उठी; पर कुछ बोली नहीं।

आखिर बलि की घड़ी आ पहुँची। शाहज़ादी को वेश्या बनना ही पड़ेगा। बचने की अब कोई उम्मीद नहीं।

शाहज़ादी को रात भर नींद नहीं आई। वह रोती रही, बिलखती रही।

(४)

हमीना धर्मदेव को साथ लिये कमरे के दरवाजे तक आयी और बोली—"जाओ बाबू, वह तो दो घंटे से भीतर बैठी तुम्हारा इन्तजार कर रही है।"

धर्मदेव ने धीरे से दरवाजा खोला, काँपता हुआ कलेजा ले भीतर घुसा, सिटकिनी बन्द की और तब निश्चिन्त हो चारों ओर नजर दौड़ाई। कमरा उत्तेजक तस्वीरों से सजा हुआ था, सुगन्ध से भरा हुआ था। सामने फूलों से सजाया हुआ बिस्तर था और उस पर आँचल से मुँह छिपाये एक स्त्री लेटी थी।

धर्मदेव निकट गया। खाट के निकट जा उसने खाँसा, पर स्त्री उसी तरह लेटी रही। तब धर्म देव खुद खाट पर बैठ गया, उसके मुख से आँचल हटाया और बोला—"उठिये, लेटी क्यों हैं ?"

शाहज़ादी कुछ सकपकायी, फिर झिझक कर आँखें खोल दीं। धर्मदेव को देख, उसने उठने की कोशिश की; पर उठ न सकी और लेटे ही लेटे बोली—"ओह, आप कुछ पहले आ गये !"

"पहले ? नहीं तो, आपकी माँ ने मुझे यहाँ भेजा है ?"

"काश, आप कुछ देर बाद यहाँ आते !"

"सो क्यों ?"

"मैं इतनी दुर्दशा से भी बच जाती।"

धर्मदेव कुछ समझ न सका। शाहजादी की जिह्वा शायद कम-जोरी से लड़खड़ा रही थी और उसके मुख से साफ आवाज नहीं निकल रही थी।

"आप कह क्या रही हैं ?"

"मैंने जहर खा लिया है। मैं कुछ घड़ी और बचूंगी।" शाहजादी ने मुश्किल से कहा और आँखें बन्द कर ली।

"जहर" धर्मदेव चौंक कर बोला—"ओफ, यह क्या हुआ ?" वह हड़बड़ा कर बाहर की ओर भागा।

धर्मदेव को इस तरह आते देख, हसीना बोली—"बाँदी से कुछ खता हो गई क्या, सरकार ?"

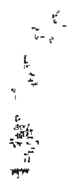
"अरे, जाकर उसकी हालत देखो; जाने क्या हो गया है !" वह घबराये हुए स्वर में बोला।

हसीना हड़बड़ा कर उठी और कमरे की ओर लपकती हुई बोली—"आपने क्या कर दिया है, उसको, बाबू ?"

"मैंने कुछ नहीं किया।" धर्मदेव पीछे आता हुआ बोला—"उसने जहर खा लिया है।"

"जहर !" हसीना चीख कर बोली—"तुमने मुझे पहले क्यों नहीं कहा, मेरी रानी बिटिया ?"

शाहजादी की उस वक्त बुरी हालत हो रही थी। डाक्टर बुलाया गया; लेकिन डाक्टर के पहुँचने के पहले ही शाहजादी का शरीर ठंडा पड़ गया था।



(५)

पुलिस ने लाश कब्जे में कर ली थी और न जाने क्या क्या जाँच कर रही थी। सारे शहर में इस बात की चर्चा फैल गयी थी और धर्मदेव का नाम भी इस केस के साथ जुड़ गया था।

धर्मदेव के पिता सिर धुन रहे थे। कहते—"इस छोकरे ने खानदान का नाम डुबा दिया। घर के लोग भूखों मर रहे थे और वह पाँच सौ रुपये रण्डी को देने गया था!"

पुलिस ने धर्मदेव को फँसाने की कोशिश की। चन्द्रदेव बाबू ने बहुत खुशामद की, रुपये पैसे से पूजा की, तब कहीं जान छूटी।

पर हम कैसे कहें कि इसमें धर्मदेव की भूल है। भूल तो विधाता की है। विधाता ने उसे हरिबाबू के यहाँ पैदा होने के लिए बनाया था; वैसा ही स्वभाव दिया था। आज यदि वह हरिबाबू का पुत्र रहता, तो न जाने कितनों की नथें उतारता और किसी को चू तक करने की हिम्मत न होती।

———.o.———

पति-पत्नी

दोनो पति-पत्नी थे। दोनों में नही बनती थी। यह नही बनना दोनों में से किसी को भी अच्छा नही लगता था। दोनों इससे असंतुष्ट रहते थे। असतोष जब कभी बहुत बढ़ जाता, तब दोनों बहुत दुःखी हो उठते थे।

पत्नी का नाम था मनोरमा। वह गुणवती और रूपवती थी। माता-पिता साधारण स्थिति के आदमी थे, बल्कि गरीब ही कहना चाहिए। उस पर उनके कई संतानें थी, जिनमें अधिकतर लड़कियां ही थीं। उनमें मनोरमा सबसे पहली संतान थी। सुन्दर और भोली थी, इसलिए पिता को बहुत प्रिय थी। मनोरमा के शौक को वह बहुत उत्साह से पूरा करते थे।

मनोरमा को पढ़ने का बहुत शौक था और पिता ने इस शौक को पूरा किया। मनोरमा ने बी० ए० पास किया, उसे हिन्दी में ऑनर्स मिला और वह सर्वप्रथम पास हुई। अभी उसे पढने का बहुत शौक था और किताबों की दुनिया उसे बहुत भली लगती थी।

पति महोदय का पूरा नाम था गोपीकान्त, पर वह अपने को मिस्टर कान्त कहना ही ज्यादा पसन्द करते थे। बहुत ज्यादा फैशनेबुल, खुश-मिजाज और रसिक। पिता जमींदार और ऊँचे सरकारी अफसर थे। मिस्टर कान्त को रोब जमाने में बहुत आनन्द आता था। रोज सज-

धज कर दुग्धफेन जैसे सफेद कपड़ों पर एक शीशी सेंट उलट, सिगरेट का धुआँ उड़ाते रहते थे। सिनेमा देखे बिना उन्हें रात में नींद नहीं आती थी। किताबों से उन्हें वैराग्य-सा था। बी० ए० उन्होंने तीन दफे में पास किया था और इस वक्त एम० ए० फाइनल में थे। एम० ए० का इम्तहान देने का उनका इरादा न था, वरन् पढ़ाई समाप्त करने की वह सोच रहे थे।

मनोरमा बी० ए० आनर्स और मिस्टर कान्त बी० ए० का मिलन संयोग से हो गया। मनोरमा के रूप ने मिस्टर कान्त को मुग्ध कर दिया। फिर ग्रेजुएट पत्नी रखना भी फैशन का एक अंग है, इसलिए मिस्टर कान्त की इस मनोवृत्ति को भी मनोरमा ने संतुष्ट किया।

सखियों ने मनोरमा के भाग्य की सराहना की, उसके माता-पिता कृतकृत्य हो गये और छोटी बहनें दीदी की किस्मत की चमक देख खुश हो गईं।

मनोरमा गंभीर थी और मिस्टर कान्त घमंडी। दोनों साल भर से एक साथ रह रहे थे। लेकिन इधर एक महीने से शायद ही कोई दिन ऐसा जाता होगा जब दोनों में बहस न होती हो और दोनों एक-दूसरे को मन ही मन न कोसते हों।

मिस्टर कान्त का फैशन बढ़ता ही जाता था। वह सुबह आठ बजे उठते और बिछावन पर लेटे ही लेटे चाय पीते। शौच जाना और मुँह धोना हफ्ते में दो-तीन रोज भूल जाते; स्नान करते वक्त कोई चालू फिल्मी गाना गुनगुनाते, रोज एक-दो पैकेट सिगरेट फूंक डालते और हफ्ते में चार दिन सिनेमा देखते। कालेज जाना कोई जरूरी न था, पर दोस्तों की पार्टी जरूर जमती। हेजलीन और स्नो आदि भी मनोरमा के बदले वही लगा लेते थे।

मनोरमा को यह सब नहीं भाता था। पति को पसन्द करना उसे जरूरी था और पसन्द करने की कोशिश भी वह करती थी। ऐसी बात भी नहीं थी कि पति से उसे घृणा हो, पर पति की आदतें उसे पसन्द नहीं थीं। वह अपने संस्कार नहीं मिटा पाती और पति के कार्यक्रम में उत्साह और खुशी से भाग नहीं ले पाती थी।

सन्ध्या का समय था। करीब सात बजे होंगे। मनोरमा कमरे में बैठी कोई पुस्तक पढ़ रही थी। वह पढ़ने में व्यस्त थी। सहसा गोपीकान्त ने कमरे में प्रवेश किया। सारा कमरा जैसे सुगंध से भर गया। मिस्टर कान्त मलमल का सफेद कुरता और महीन चुनी हुई धोती पहने थे। जेब में 'एवरशार्प' शोभा दे रहा था और कलाई पर कीमती घड़ी चिपकी थी। ओठों में सिगरेट दबा हुआ था। आते ही बोले—"चलो, तैयार हो न?"

मनोरमा चौंक पड़ी। उसने किताब से दृष्टि हटाकर गोपीकान्त की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा—मानो पूछ रही हो कि कैसी तैयारी के बारे में उससे कहा जा रहा है।

कान्त जल्दी में थे। मनोरमा का ऐसे फक की तरह मुंह ताकना उन्हें बहुत बुरा लगा। चिढ़कर बोले, "इस तरह ताक क्यों रही हो? देखो, समय हो रहा है।"

मनोरमा उठ खड़ी हुई। बोली, "पर बात क्या है?"

कान्त को बहुत गुस्सा आया—"देखिए देवी जी, इस तरह ज्यादा बनना अच्छा नहीं लगता। मैं समझ गया, तुलसीदास और कबीर के सिवा और बातों में आपको दिलचस्पी नहीं, पर क्या आपका समूचा दिमाग इन 'कवितायों' से ही भरा है—दूसरी बातें वहाँ ठहरती ही नहीं!"

मनोरमा ने अपने को बहुत अपमानित अनुभव किया, पर वह शान्त रही और नम्र स्वर में बोली—"आप गुस्सा क्यों होते हैं। क्या मुझे इतना पूछने का भी अधिकार नहीं कि मुझे कहाँ चलना होगा ?"

"क्या मैं ग्रामोफोन का रेकार्ड हूँ कि एक ही बात को बार-बार दुहराता रहूँ ? मैंने एक दफा कह दिया था। पर जब मेरी बातें भूल जाने की तुम्हें आदत है और इसी में तुम्हें आनन्द मिलता है तो इसका कोई उपाय नहीं !"

मनोरमा को याद आया कि आज शनिवार है और कोई नई फिल्म आज से शुरू होनेवाली है। कान्त ने चार रोज पहले ही मनोरमा से कह दिया था कि शनिवार को चला जायगा। उसने सीट रिजर्व करा ली थी और अब तैयार होकर चलने को आया था। मनोरमा सचमुच इसके बारे में भूल गई थी। बोली—"मेरे ध्यान से उतर गया। ऐसा कितनी बार हो जाता है। आपसे भी होता होगा। मैंने जान-बूझकर कुछ थोड़े ही किया है। अब कितना समय है ?"

"पाँच मिनट।"

"तब तो मुश्किल है। इतना तो पहुँचने ही में लगेगा। कहिए, ना इसी तरह चलूँ।"

"वाह !" कान्त नाक-भौंह सिकोड़ कर बोला—"मुझे वहाँ दूसरा तमाशा ले जाना है क्या ? तुम्हें सोसाइटी का जरा भी खयाल नहीं। कुछ तमीज रहनी चाहिए।"

मनोरमा का चेहरा तमतमा गया। अपने पर काबू रख बोली—"खैर, तमीज अब आपसे सीख लूँगी।"

"सीखने के लिए भी अक्ल चाहिए।" गुस्से से पैर पटकता वह कमरे से बाहर निकल गया।

पति-पत्नी

मनोरमा ने किताब को बिछावन पर एक ओर फेंक दिया और आईने के सामने जाकर खड़ी हो गई। उसने सिर से पैर तक अपने को देखा और मन ही मन बोली—"कौन बुरी लग रही थी। धुले हुए साफ कपड़े है। पर उन्हें तो न जाने क्या चाहिए। असल सौंदर्य तो स्वास्थ्य में है। पर जब जिन्दगी भर साथ रहना है तो इस तरह कब तक काम चलेगा। या तो उन्हें अपने अनुकूल बनाना पड़ेगा या मुझे उनके अनुकूल बनना होगा। तीन साल में बी० ए० पास किया और मुझे अक्ल बताने चले है। सचमुच रईसों, और अमीरों के लड़के भी कुछ अजीब होते है। इन लोगों के लिए वैसे ही हलके दिमाग की औरतें चाहिए जिनका अपना कोई अस्तित्व नहो, कोई विचार नहीं। खैर, मुझे कोई शिकायत नही। उन्हें दिखलावे में ही खुशी है तो मुझे कोई एतराज न होना चाहिए। अपना-अपना शौक है। पर क्या औरतें सिर्फ एक शौक की चीज हैं? इतनी दीनता और इतना तुच्छ स्थान औरतें स्वीकार क्यों करती है? पर किया क्या जाय? रोज-रोज का झगड़ा किसे अच्छा लगता है? वह पतिदेव हैं। उनकी खुशी में मेरी खुशी है।"

(२)

मिस्टर कान्त सिनेमा हाल में बैठे तो थे, पर उनकी तबीयत खेल में न लग रही थी। खेल साधारण, पर रोचक था। फिर इसमें उनकी फेवरिट अभिनेत्री काम कर रही थी। इसके विषय में कान्त अपने दोस्तों से कहा करते थे, "कमाल की ब्यूटी है इसकी दोस्त। इसकी मुस्कान गजब ढाती है। मेरी तो इच्छा होती है कि बम्बई जाऊँ और इसके ऊपर हजार दो हजार खर्च कर आऊँ।"

दोस्त कान्त की रसिकता की बड़ाई करते, दरियादिली की तारीफ करते और कान्त फूलकर कुप्पा हो जाता। पर उस प्रिय अभिनेत्री के

अभिनय में भी आज कान्त को आनन्द न मिल रहा था। उसके चेहरे पर उदासी छाई थी और सिनेमा में बैठा वह कुछ और ही सोच रहा था। उसके दिल में यह वहम हो गया कि मनोरमा उसे मूर्ख समझती है और उसकी उपेक्षा करती है। उसने मेरी जिन्दगी का सारा मजा किरकिरा कर दिया। पढ़ी-लिखी लड़कियों से पार पाना मुश्किल है। किसी भी स्त्री के द्वारा अपमान नहीं सहा जा सकता——जब अपनी स्त्री के द्वारा अपमान हो तो वह और भी असह्य हो उठता है। वह बी० ए० आनर्स है और मैं बी० ए० हूँ। वह मुझे कितना लघु समझती है। तभी तो मेरी बातों को वह चुटकी में उड़ा देती है। नहीं, यह ठीक नहीं। सोचा था, इस साल एम० ए० की परीक्षा न दूँगा। पर मुझे अब एम० ए० करना ही होगा। इसके बिना काम नहीं चलेगा।"

कान्त फिल्म देखकर तो निकला, पर उसे कुछ याद नहीं था कि उसने फिल्म में क्या देखा, क्या नहीं। वह पर्दे पर शून्य दृष्टि से देख रहा था। उसका ध्यान दूसरी ही जगह था। वह करीब दस बजे घर लौटा। मनोरमा तब तक बैठी थी। कान्त के जाने के बाद उसने सुन्दर कपड़े बदले थे और देखने में बहुत आकर्षक लग रही थी। कान्त उसे देखकर चकित रह गया। उसने सोचा, "यह है मनोरमा——कितनी अच्छी, कितनी भली। लेकिन यह मुझ से प्रेम नहीं कर पाती, मुझ पर श्रद्धा करने में समर्थ नहीं होती। कारण यह कि मुझ में गुण नहीं, विद्या नहीं। मैं नालायक हूँ, समय बरबाद करता हूँ, धन फूँकता हूँ——ओफ कितना बुरा करता हूँ मैं!"

मनोरमा चेहरे पर हँसी लाकर बोली——"कैसा खेल था?"

"मामूली। अच्छा किया जो नहीं गई। बेकार समय बरबाद होता। मुझे भी जाकर अफसोस ही हुआ।"

मनोरमा की हंसी विलीन हो गई । कान्त ने यह उत्तर सहज भाव से दिया था, पर मनोरमा को लगा कि पतिदेवता चिढ़कर ऐसा बोल रहे हैं और व्यंग्य कर रहे हैं । मनोरमा ने निश्चय किया था कि अपने व्यवहार से जिस पति को उसने अनजाने में ही असंतुष्ट कर दिया है, उसे कुछ मीठी-मीठी बातें कह वह खुश कर देगी । पर उसका यह निश्चय क्षण भर में काफूर जैसा उड़ गया । भारी मुँह बनाकर बोली, "आपको अफसोस हो, इसका तो कोई कारण नहीं है ।"

"क्यों ?"

"ऊँह, अफसोस करनेवाले लोग दूसरी तरह के होते हैं । बार-बार अफसोस करने का अवसर वह नहीं आने देते ।"

"मैं इस बात को मानता हूँ ।" कान्त ने इतनी आसानी से बात को मान लिया कि बहस की गुंजाइश ही न रही ।

कुछ देर तक शान्ति रही । फिर कान्त ने पूछा, "एलार्म घड़ी किधर है ?"

मनोरमा ने टेबुल की ओर इशारा कर कहा, "उधर है ।"

"जरा पाँच बजे सुबह का एलार्म तो दे देना ।"

"सुबह का ?" मनोरमा को आश्चर्य और साथ ही भय भी हुआ कि नाराज होकर सुबह की गाडी से कहीं जाना तो वह नहीं चाह रहे हैं । बोली—"कहीं जाना है क्या ?"

"नहीं, अब सबेरे उठा करूँगा । इम्तहान निकट आ रहा है । मुझे कुछ मेहनत करनी चाहिये ।"

"यह नया इरादा कब से किया ?" मनोरमा ने हँसकर कहा ।

"तो क्या तुम यह चाहती हो कि मैं इम्तहान के लिये कुछ न पढ़ूँ ।" कान्त आहत हो बोला ।



"मैं ऐसा क्यों चाहूंगी जी !" मनोरमा मुस्करा कर सर का अंचल ठीक करती हुई बोली—"लेकिन मुझे शक है कि इतने सबेरे आपकी नींद टूटेगी ।"

"क्यों न टूटेगी ! न उठूं तो तुम उठा देना ।" फिर मनोरमा के पास बैठ कान्त धीरे-धीरे बोला, "मैं बहुत बेवकूफ हूं, मनोरमा ! मैं समय भी बरबाद करता हूँ और पैसे भी बरबाद करता हूं । कुछ सोचता भी नहीं हूँ कि आगे क्या होगा । थोड़ी-सी जायदाद से तो काम न चलेगा । पिता जी की नौकरी ही सब कुछ है । अगर मेरी यह हालत रही तो पिता जी के बाद भूखों मरने की नौबत आ जायगी । यह बात मुझे पहले ही सोचनी चाहिये थी ।"

कान्त के इस मानसिक कायाकल्प को देख मनोरमा को बहुत विस्मय हुआ । साथ ही उसे कौतूहल भी हुआ । उसके हृदय में आनन्द का स्रोत बह रहा था ।

(३)

कान्त इतनी जल्दी बदल गया कि उसके मित्र और सम्बन्धी सब आश्चर्य में पड़ गये । कान्त अब सूर्योदय तक नित्यकर्म से निश्चिन्त हो पढ़ने बैठ जाता है । सिगरेट पीना उसने एकदम छोड़ दिया है । सिनेमा भी इधर पूरे सप्ताह भर से उसने नहीं देखा है । हाँ, पोशाक अभी तक उसने नहीं बदली है । अभी तक सिल्क, मलमल और महीन धोती पहनता है । इतना शौक वह न छोड़ सका ।

पुत्र में यह परिवर्त्तन देख पिता ने कहा, "मालूम होता है, गोपी को बहू ने सँभाल लिया है । मैं तो इससे निराश हो गया था । पढ़ी-लिखी सुशील लड़की है । खुद भला-बुरा समझती है, दूसरों को समझा सकती है । लोग नाहक पढ़ी-लिखी लड़कियों को बदनाम करते हैं ।"

पति पत्नी

मित्रों ने कहा, "कान्त को आखिर बीबी ने गुलाम बना ही लिया। मैं तो पहले ही समझता था कि मियाँ दब्बू निकलेंगे। अब जिन्दगी भर बीबी के तलवे सहलाना रहेगा। जब बीबी ने एक दफा पछाड़ा है तो मियाँ अब कभी न सर उठा सकेंगे!"

पर मनोरमा को इधर एक नई चिन्ता तंग किये थी। कान्त का यह अचानक परिवर्तन जाने क्यों उसे अच्छा न लगा। जिस तरह किसी रोगी का उच्च ज्वर एकाएक उतर कर साधारण राशि पर पहुँच जाने से कुशल डाक्टर को खुशी के बदले चिन्ता ही होती है, उसी तरह कान्त के इस आकस्मिक परिवर्तन ने मनोरमा को भी चिन्तित कर दिया। वह आठ बजे तक सोये रहनेवाले कान्त को पाँच बजे उठते देखती, बारह बजे तक अपने को सँवारने में व्यस्त रहनेवाले कान्त को एकाग्रभाव से पुस्तक पर झुका देखती, मित्रों के कहकहों से अलग हट कापी पर नोट उतारते देखती तो उसका दिल संदेह से भर जाता।

एक दिन सुबह नौ बजे के करीब कान्त टेबुल पर झुका किताब पर दृष्टि जमाये बैठा था। धीरे-धीरे मनोरमा वहाँ आई और टेबुल से सटकर खड़ी हो गई। कान्त ने दृष्टि उठाकर उसकी ओर देखा। फिर हँसकर बोला, "तुम दिनोंदिन और सुन्दर होती जा रही हो।"

मनोरमा ने कान्त के चेहरे की ओर देखा। उसका उद्धत और चंचल मुख कितना गम्भीर और शान्त हो गया है। अचानक ऐसा क्यों हुआ? कौन-सा सदमा इन्हें लगा? हे भगवान्, कहीं वह स्वयं तो इसके लिए उत्तरदायी नहीं?

मनोरमा ने कहा, "तुम मुझ से यह कैसा बदला ले रहे हो?"

"बदला कैसा!" कान्त अचरज से बोला—"तुम यह क्या कह रही हो, मनोरमा?"

"इस तरह धुन में आकर तुमने अपना रहन-सहन सब बदल दिया है। मैं क्या कुछ समझती नहीं कि इसके लिए तुम्हें अपने पर कितना अत्याचार करना पड़ता होगा ? क्या तुम समझते हो कि इससे मुझे खुशी होती है ? पर तुम्हें मेरी खुशी की क्या परवाह ? तुम्हें तो मुझे जलाना ही अच्छा लगता है।"

कहते-कहते मनोरमा का गला रुंध गया और टपटप आंसू टेबुल पर गिरने लगे।

कान्त उठ खड़ा हुआ। रूमाल से उसने मनोरमा के आँसू पोंछे और स्नेहभरे स्वर में बोला—"ये वाहियात बातें तुम्हारे मन में किसने भर दी मनोरमा ? तुम इतनी अक्लमन्द होकर भी ऐसी बातें करती हो। मेरा विश्वास करो, तुम्हें दुखी करने का मेरा जरा भी इरादा नहीं है। मैं जो करता हूँ, तुम्हारी खुशी के लिये।"

"मेरी खुशी के लिये !" मनोरमा रुँधे कंठ से बोली, "मेरी खुशी के लिये तुम अपने सुख पर लात मार दो, क्या यह मुझे कभी अच्छा लग सकता है ?"

"पर तुम्हें किसने कहा कि मैं खुश नहीं हूँ। मैं अब समय का सदुपयोग करता हूँ। इससे मुझे कितनी खुशी होती है। मैं अनुभव करता हूँ कि मैं भी किसी काम का आदमी हूँ।"

"तुम अपने ऊपर जबर्दस्ती न करो, यही तुमसे मेरी प्रार्थना है।"

कान्त मनोरमा की ठोड़ी को छूकर हँस दिया और बोला—"तुम कितनी भोली हो, मनोरमा। सचमुच, औरतों को समझना बहुत मुश्किल है। न जाने कैसे वे खुश होती हैं। तुम तो मेरे लिये एक पहेली बन गई हो !"

मनोरमा के मुख पर मुस्कान की रेखा खिंच गई। बोली, "तो अब पहेलियाँ बूझा करो।"

"हाँ, इसमें भी आनन्द है ।"

"पुरुष सदा आनन्द के भूखे रहते हैं । जब देखो तब वही आनंद . . !" मनोरमा हँसकर बोली ।

"खैर, पुरुष तो आनन्द के भूखे रहते हैं, पर स्त्रियाँ किस चीज की भूखी रहती हैं, इसका पता मुझे आज तक न चला ।"

"मैं बता दूँ ?"

"बताओ ।"

"स्त्रियाँ प्यार की भूखी रहती हैं ।" मनोरमा ने सर झुकाकर कहा । उसके कपोल लज्जा की लाली से लाल हो उठे ।

वरदान

मधुव्रत एक बहुत विचारवान् युवक था। वह बहुत गम्भीर और भावुक था, और उसके दिल में मानो दया की हिलोरें उठती रहती थीं। दूसरों की तकलीफें वह बरदाश्त नहीं कर सकता था। अपरिचितों और अनजान व्यक्तियों को भी दुःख में देख उसकी आँखें भर आतीं। सारा संसार उसका कुटुम्ब था, और वह अनुभव करता कि सभी को सुखी रखने का उत्तरदायित्व उसी पर है। उसके अन्दर दुनिया के लोगों को सुखी करने के लिये कुछ चेष्टा करने की जबरदस्त प्रेरणा होती।

मधुव्रत बहुधा एकान्त में बैठकर दुनिया के दुःख का कारण ढूँढ़ने की कोशिश करता। कौन-सा कष्ट अथवा कौन-सा अभाव मनुष्यों के लिये इस दुनिया को दुःख का समुद्र बनाये हुए है? 'काश, मुझे इसका पता लग जाता!' मधुव्रत सोचता—'मैं उस कारण को नष्ट कर दुनिया के लोगों को सुखी कर देता!' यह बात मधुव्रत के हृदय से निकलती। वह ढोंग नहीं रचता था। दुनिया के लोगों के लिये उसके दिल में स्नेह और प्यार का भाव था, जितना माता-पिता के हृदय में अपनी संतान के लिये रहता है।

विचारों की दुनिया से निकल कर मधुव्रत यथार्थ दुनिया को देखने निकला। उसने सारे देश का भ्रमण किया। उसका हृदय द्रवित हो गया। 'आह, कितने गरीब हैं ये लोग!' वह सोचता—'गरीबी ने इन्हें

तबाह कर दिया है । कितने दुःखी है ये लोग ! गरीबी को मिटा दो, फिर दुनिया सुखी हो जायगी ! गरीब आदमी को ठीक से भोजन भी नही मिलता, और भूख दुनिया को तबाह कर रही है । बच्चे भूख से बिलख-बिलख मर जाते है, और जवान भूखे रहने के कारण असमय मे ही , स्वास्थ्य नष्ट हो जाने के कारण, वृद्ध हो जाते हैं !"

और मधुव्रत को बहुत खुशी हुई, मानो उसकी तपस्या सफल हुई, और समस्या का हल उसे मिल गया । बुद्ध को ज्ञान मिलने मे जितनी खुशी हुई होगी, उससे कम आनन्द मधुव्रत को न हुआ । उसे समस्या का ज्ञान तो हो गया, जिसका हल निकाल वह दुनिया को शान्त और सुखी बना सकेगा ।

अब मधुव्रत के सामने प्रश्न था कि भूख की समस्या को हल कैसे किया जाय । मधुव्रत दिन-रात इसके विषय में सोचता रहता, साम्यवादी योजनाएँ या इसी प्रकार की विविध स्कीमें उसे न भायी, क्योंकि वह बहुत अधीर हो गया था, और तत्काल फल देनेवाला रामबाण उपाय चाहता था, न कि अनिश्चित अवधि वाली विभिन्न स्कीमें ।

मधुव्रत निराश हो गया । उसने सोचा कि यह एक ऐसी समस्या है जिसका हल मानव-मस्तिष्क निकाल ही नही सकता । सदियों से वह इस समस्या का समाधान खोज रहा है, पर उसे सफलता न मिली । कभी मिलेगी भी या नही, इसमें भी संदेह है ।

पर समस्या का समाधान तो ढूँढ़ना ही पडेगा । मानवता को यों ही दुःख के सागर में डूबते तो छोड़ा नहीं जा सकता । कितनी दयनीय है इस दुनिया की हालत ! करोड़ों जीव भूखे रहते हं, या अधभूखे पेट की ज्वाला से तबाह हो रहे है । और मधुव्रत चुप बैठा देखा करे । ऐसी स्थिति उसके लिये असह्य थी ।

और अन्त में आतुर हो, मधुव्रत ने एक अटपटा निश्चय कर लिया। वह ईश्वर से साक्षात्कार कर उन्हीं से इस समस्या का हल मांगेगा।

लोगों ने उसका मजाक उड़ाया, पर वह अपने निश्चय पर डटा रहा। हिमालय के एक निर्जन खोह में जा उसने अपना भीषण तप आरम्भ किया। वह अन्य सभी काम भूल गया, और एकाग्रचित्त हो ईश्वर का ध्यान करने लगा।

अन्त में उसकी तपस्या सफल हुई। ईश्वर से उसका साक्षात्कार हुआ। ईश्वर ने उसे वर माँगने को कहा, तो उसने अपनी समस्या सामने रख दी, और ईश्वर से उसका हल माँगा।

ईश्वर ने उसे एक ऐसी जड़ी की पहिचान करा दी, जो हिमालय के जंगलों में बहुतायत से मिलती थी, और जिसका छोटा-सा एक टुकड़ा खा लेने से मनुष्य को सारे जीवन फिर भूख न लगती, और बिना कुछ भोजन किये भी वह उतना ही संतुष्ट और स्वस्थ रहता, जितना पुष्ट-से-पुष्ट भोजन करने पर वह रह सकता था।

मधुव्रत कृत-कृत्य हो गया। उसका परिश्रम सफल हुआ। उसने समझा, अब संकट के दिन गये, और दुनिया के लोग सुख और शान्ति की जिन्दगी बसर कर सकेंगे, और पेट का सवाल सदा के लिये हल हो जायगा।

उसने अपना कार्यक्रम बनाया। इस जड़ी को बेच कर दुनिया की अधिकांश सम्पत्ति उसने अपने अधिकार में कर लेने का विचार किया। और तब भूख से सभी लोगों को मुक्त कर उन्हीं रुपयों के सदुपयोग से दुनिया को स्वर्ग बना देने का उसका विचार था।

उसने ऐसा ही किया। पहले उसने जड़ी को बहुत अधिक कीमत पर बेचा। जब उस कीमत पर खरीदनेवाला कोई न रहा, तब कीमत कुछ कम कर दी, और अन्त में कंगालों को मुफ्त ही जड़ी बाँट दी।

इस प्रकार सचमुच दुनिया की अधिकांश सम्पत्ति मधुव्रत के पास आ गई, और भूख की समस्या सदा के लिये हल हो गई। उस जड़ी की पहिचान सभी को हो गई, और वह सर्वसुलभ हो गई।

अब उसने दुनिया के लोगों का आराम बढ़ाने की कोशिश की। सड़कें और पार्क बनाने, अच्छे-अच्छे शहर बसाने और सुख-चैन की जिन्दगी के लिये आवश्यक अन्य वस्तुओं को बनाने में ही अपने पास की सम्पत्ति को खर्च करने की तैयारी मधुव्रत ने शुरू कर दी।

कुछ दिनों तक काम सुचारु रूप से चलता रहा। अच्छी-अच्छी सड़कें बनीं, अच्छे-अच्छे शहर बसे, और ऐसा लगा कि दुनिया अब सचमुच स्वर्ग का एक कोना बन जायगी।

सहसा ऐसा लगा कि सारी स्कीम पर जैसे पानी फिर गया। मधुव्रत को काम करनेवालों का अभाव हो गया। मजदूर बहुत मुश्किल से मिलते, मानो उनका अकाल पड़ गया हो।

दुनिया की आबादी ज्यों की त्यों थी, या कुछ बढ़ी ही थी, पर काम करनेवालों की कमी होती जा रही थी। मजदूरी में कोई आकर्षण न रह गया था, क्योंकि लोग इसकी विशेष जरूरत महसूस नहीं करते थे। पेट की समस्या थी नहीं, और अब वह बात रह न गई थी कि दो जून रोटी के लिये हाथ पाँव चलाना जरूरी था। मनुष्य आलसी हो गया। और आलसी दिमाग शैतान का घर होता है, इसीलिये दंगे-फसाद बढ़ने लगे।

धन पर अधिकार रहते भी मधुव्रत असहाय हो गया। उसने लोगों को समझाने की हजार कोशिशें कीं, पर स्वस्थ और पेट से सन्तुष्ट लोगों पर उसका कोई असर न पड़ा। दुनिया उजाड़ होती गयी, और दंगे-फसाद बढ़ते गये।

धीरे-धीरे अशान्ति बढ़ती गई, और सारी दुनिया में खून-खराबी होने लगी। लोग मुक्त थे, काम करने की कोई जरूरत वे महसूस नहीं करते थे, और मनमाना काम करने को अपने को स्वतन्त्र समझते थे। कुछ ही वर्षों के अन्दर सुख और शान्ति का दुनिया से लोप हो गया।

अब तो मधुव्रत बहुत घबराया। उसकी सारी आशाओं पर पानी फिर गया। उसकी बुद्धि काम न करती। और उसके सामने ही दुनिया के लोग पहले से भी हज़ार-गुना अधिक दुःखी हो गये।

अन्त में लाचार हो मधुव्रत ने दूसरा भीषण तप किया, और ईश्वर से साक्षात्कार होने पर वर माँगा— 'भगवान्, जड़ी को व्यर्थ कर दुनिया के लोगों में भूख वापस कर दो!"

"तथास्तु!" ईश्वर ने कहा।

मधुव्रत कृतार्थ हो गया।

———o———

सन्देह का विष

आज का मौसम बहुत सुहावना था। सुबह मैं सो कर उठा, तो बाहर हल्की वर्षा हो रही थी। बाहर खुले में आकर खड़े होने का लोभ मै सवरण नही कर सका। फूलझड़ियों की-सी वर्षा में खड़ा रह ठण्डी-ठण्डी हवा का आनन्द लेना बहुत भला लग रहा था। यों मैं सुबह देर से सो कर उठने का आदी हूँ, और इसी कारण सुबह उठने के बाद तबीयत अलसायी रहती है। पर आज चित्त बहुत प्रसन्न और प्रफुल्लित-सा लग रहा था। न जाने क्यों आज की सुबह मुझे बहुत अच्छी लग रही थी, और मैं बहुत खुश था।

सहसा वर्षा का वेग बढ़ गया। कुछ देर तक भीगते रहने के बाद मैं तेजी से कमरे के अन्दर चला आया। श्रीमती जी अभी तक सोयी हुई थी। आज रविवार था। आफिस था नही। लोग जानते थे कि रविवार को मै घर पर भी कोई काम नही करता। इसलिए किसी काम-काजी मुलाकाती के आने की भी सम्भावना नही थी। मुझे किसी प्रकार की जल्दी न थी। निश्चिन्त-सा था। श्रीमती जी की नींद टूट रही थी। अतः मै भींगे कपड़े बदलने के लिये खूँटी के निकट चला आया। सहसा मेरी नजर खिड़की के बाहर चली गई। बाहर जो-कुछ देखा, उससे जब मेरी दृष्टि फिरी, तो मेरी आँखें भरी हुई थीं। मेरा चित्त भयकर रूप से उदास हो गया था। चुपचाप चारपाई पर बैठ मैं विचारमग्न हो गया।

सहसा मेरा ध्यान जब भंग हुआ, तो मैंने देखा कि श्रीमती जी मेरा कन्धा पकड़े मुझे हिला रही थी। मैं चौंक पड़ा, और अपने कपड़े की ओर देखने लगा। कपड़े बहुत भीग गये थे, और उन भींगे कपड़ों के कारण जहाँ मैं बैठा था, वहाँ का बिछावन भी भीग गया था। श्रीमती जी ने मुझ से कहा—"क्या सोच रहे हो ? सुबह-ही-सुबह इस तरह कपड़े कैसे भिगो लिये तुमने ?"

"कुछ नहीं," मैंने कहा। मेरे मुँह से एक निःश्वास निकल गया, और मेरी आँखें पुनः खिड़की की ओर चली गईं।

"बात तो कुछ है", वह बोलीं—"बिना वजह कोई इस तरह उदास होकर थोड़े ही बैठता है।"

अब अधिक चुहल करने की उम्र हम दोनों की न रही थी। शादी के बारह साल बीत चुके थे। हालाँ कि दिल अभी भी उमंगों से भरा था, और मन और शरीर दोनों जवान थे, पर अब हमारे दैनिक जीवन में कोई नवीनता न थी। अपने व्यवहारों में हम दोनों पूरी तौर पर खुल चुके थे। अतः बिना अधिक भूमिका के मैं बोला—"वह कब आई ?" मेरी नजर अब भी खिड़की की ओर थी।

"कौन ?"

मैं खिड़की के निकट जा खड़ा हो सामने के मकान की ओर देखने लगा।

श्रीमती जी मेरा भाव न समझ सकी। मेरे पीछे खिड़की के पास आ बोलीं—"किसके आने की पूछ रहे हो तुम ?"

मैंने अपनी उँगली सामने की इमारत की ओर उठा दी।

श्रीमती जी की दृष्टि मेरे संकेत का अनुसरण करती हुई सामने की इमारत की ओर गई। उन्हें करुणा की मूर्त्ति दिखलाई दी।



सन्देह का विष

करुणा को, आज हम छ वर्षों के बाद देख रहे थे। उसके चेहरे पर वर्षों मे अपना आधिपत्य जमाये रहने वाली उदासी छायी थी। उसके मुख पर, जिस पर आज मे आठ वर्ष पूर्व सदा हल्की लालिमा छायी रहती थी, आज पतझड़ का पीलापन दिखलाई पड रहा था। उसे देख श्रीमती जी के चेहरे पर भी एक व्यथा की छाया पड़ गई। यो उनका स्वभाव बहुत सयत, सरल और शान्त था। मानव होकर किसी मानव के प्रति किसी प्रकार की अरुचि या उपेक्षा का भाव रखना वह एक गुरुतम अपराध समझती थी। लेकिन मैंने प्रत्यक्ष देखा कि वह करुणा पर दृष्टि पड़ते ही विचलित-सी हो गई। कुछ अस्थिर-सी हो बोली—"अच्छा, करुणा फिर आई है ?"

मै अभी भी भावनाओं के प्रवाह में बह रहा था। मेरे मुंह से निकल पड़ा—"इस अभागिन को ईश्वर ने इतनी रूप-राशि क्यों दी ?"

श्रीमती जी ने एक तीव्र दृष्टि से मेरी ओर देखा। फिर बोली—"वह कभी तुम्हे चैन से नहीं रहने देगी।"

मैंने कुछ शिकायत-भरे लहजे में कहा—"क्यो व्यर्थ ही दोष देती हो उसे। उसने आज तक कभी एक शब्द भी मुझसे कहा है ?"

"कहे तब जब कुछ कहने को हो। वह तुम्हे कह भी क्या सकती है!"

"कह क्यो नहीं सकती ? कहने के लिये भी किसी के पास बातो की कमी होती है। फिर करुणा की जबान तो कैंची की तरह चला करती थी। वैसी चंचल लडकी मैंने आज तक नही देखी।"

"यह सब सही है। पर जिसने किसी का कुछ बिगाड़ा नहीं, उस पर क्यो कोई बिगडेगा, चाहे उसकी जबान कैंची हो या कुछ हो ?"

"बिगडने की बात तुमने खूब कही!" मन्द स्वर में मैंने कहा—'मेरे ही कारण तो आज वह कही की न रही। मेरे ही कारण तो वह

मकान, जिसमें कभी स्वर्ग उतर आया था, आज श्मशान-सा भयावना हो गया है।"

"तुम्हारी यही बात मुझे पसन्द नही। इतने बडे दुष्कार्य का बोझ तुम अपने सिर पर क्यों ले लेते हो? अपनी किस्मत का लेखा सब को भोगना पड़ता है। करुणा की दशा देख किसे दुःख नही होता। पर तुम्हीं बताओ, उसमें तुम्हारी तनिक भी गलती कहीं थी?"

उनके इस प्रश्न का सन्तोषजनक उत्तर मैं कभी भी न दे सका। सचमुच जान या अनजान में भी उन घटनाओं के लिए मैं तनिक भी उत्तरदायी नहीं था। मैं स्वभाव से चचल जरूर हूँ, पर मुझ में सयम का अभाव नही है। लड़कपन में लोग मेरी शरारतों से तग रहते थे। सयाना होने पर भी मेरा चुलबुलापन बहुत अशों में कायम रहा। पर शुरू से ही मैं कमजोर चरित्रवालों से दिल से घृणा करता था, और मुझे अपने चरित्र की दृढ़ता पर गर्व था। शादी के पहले मैं स्त्रियों के प्रति पूर्ण रूप से उदासीन था। पर शादी के बाद मेरी पत्नी, छाया मेरे हृदय की पूर्ण रूप से शासिका बन गई। मेरा कट्टर से कट्टर विरोधी भी मुझ पर चाहे जो दोष लगा दे, पर चरित्र-सम्बन्धी कोई इलजाम लगाने के पहले उसके मन में एक जबर्दस्त दुविधा का भाव अवश्य उत्पन्न हो जायगा।

हरीश मेरे घनिष्टतम मित्रों में था। उसे मैं बचपन से जानता था। हम दोनों एक-दूसरे को अच्छी तरह जान-पहिचान गये थे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं था। हरीश को मैं बहुत चाहता था। उसे सुखी और सन्तुष्ट देख मुझे एक अजीब तरह के आनन्द की अनुभूति होती थी। उसके प्रति ईर्ष्या-द्वेष का भाव मुझ में एकदम नही था। हरीश भी इस बात को महसूस करता था। वह मुझसे अधिक शान्त और भावुक

ा। वह उम्र में मुझसे दो-तीन वर्ष बड़ा था। उसके परिवार के साथ बहुत हिल-मिल गया था।

सहसा छाया के शब्दों से मेरी विचार-धारा रुक गई। वह कह रही थी— "देखो, इस प्रकार की व्यर्थ की बातों की चिन्ता में घुलते रहोगे, ो ठीक न होगा। इधर कई वर्षों से तुम उन बातों को भूल गये थे, र म देखती हूँ कि करुणा उस सूखे जख्म को फिर हरा कर देगी। उठो, ब कपड़े बदल लो, ठंढ लग जायगी।"

"बदलता हूँ," मैंने उठते हुए कहा।

म मन में ही कह रहा था, "हरीश को न मैं कभी भूला था, न भी उसे भूल सकता हूँ! खिले फूल की गन्ध की तरह उसकी याद सदा ाजी रहेगी।"

वास्तव में हरीश को भूलना मेरे लिए सभव न था। हम दोनों न्म के पड़ोसी थे, और दोनों ही अपने माता-पिता की एकमात्र सन्तान थे। लम्बी-चौड़ी विशाल इमारतों के रहनेवालों के बीच हमें सिर्फ एक-दूसरे का ही अधिक सामीप्य मिला था। हम दोनों का जीवन एक-दूसरे की मधुर स्मृतियों से भरा हुआ था। हम दोनों मानो एक-दूसरे के जीवन के अभिन्न अंग हो गये थे। हरीश जैसा मित्र पाकर मैंने अनुभव किया था कि मैत्री का रिश्ता कितना घनिष्ठ हो सकता है। हरीश की चर्चा-मात्र होने पर मेरा दिल प्यार से भर जाता। मैं कल्पना भी नहीं कर पाता था, कि उससे अधिक सच्चरित्र, संयमी, शांत और समझदार युवक कोई हो सकता है। मैं अपने आपको भूल जाऊँ, यह सभव है, पर हरीश को भूलना मेरे लिए मुमकिन नहीं।

पर छाया का कहना भी कुछ अंशों में सही था। समय-असमय मुझे हरीश के संग बिताये अतीत के बीते दिनों की याद बहुधा आया

करली थी। शायद ही कोई शाम ऐसी होती, जब हम एक साथ टह-लने न जाते, शायद ही कोई ऐसा दिन होता, जिस दिन हम दोनो कुछ घंटे एक साथ न व्यतीत करते। मुझे उन घड़ियों की याद आती। उसकी बातें, उसकी हँसी सब मुझे याद आतीं।

करुणा को देखते ही मुझे एक घटना विशेष की याद आ जाती, और मेरी आँखें बरसने लगती। वह दृश्य मेरी आँखों के सामने नाच जाता, जिसे देखने की बात मैं स्वप्न में भी नहीं सोच सकता। पर विधाता के विधान के सामने सब को झुकना पड़ता है। मुझे भी छाती पर पत्थर रख उस दृश्य को देखने के लिए विवश होना पड़ा था। वह हरीश के जीवन-नाटक का अन्तिम दृश्य था, और मेरे जीवन का सब से भयावना दृश्य। काश, वह दृश्य वैसा न होकर किसी दूसरे प्रकार का होता! हरीश की वह मुख-मुद्रा, हरीश का वह रूप मेरी आँखों के सामने बार-बार अपनी पूर्ण स्पष्टता के साथ नाच उठता। कितनी घृणा, असन्तोष और क्रोध मेरे प्रति अपने हृदय में भरे हुए हरीश ने अपना प्राण त्यागा था। उन बातों की याद आते ही मेरी छाती फटने लगती है, और मैं सोचने को मजबूर हो जाता हूँ कि यह सब होने के पहले ही मैं मर क्यों नहीं गया।

करुणा जब सदा भरी रहने वाली आँखों को उठा कर करुण दृष्टि से मेरी ओर देखती, तो मुझे लगता कि यह धरती फट जाय, और मैं उसमें समा जाऊँ।

करुणा उस रात हरीश के चरणों के पास पड़ी आँसू बहा रही थी। हरीश की वह अन्तिम घड़ी थी। पर हरीश ने प्यार से उसके सिर पर हाथ नही फेरा, सान्त्वना के दो शब्द नही कहे, उसके भविष्य में कोई दिलचस्पी नहीं प्रकट की। उसने अपनी आँखें मूद ली थी, अपनी उस साध्वी और प्रेम की प्रतिमा पत्नी के प्रति गहरी घृणा का भाव लिये।

यह वही करुणा थी, जो उसके लिये अपनी जान देने के लिए भी सदा तैयार रहती थी।

सचमुच करुणा की-सी पत्नी पाना सौभाग्य की बात थी। उसका नाम तो करुणा था, पर उसके चारों ओर का वातावरण सदा सरस और सुन्दर रहता था। करुणा के मुख से सदा हँसी का फौवारा छूटा करता था, उसके आस-पास बैठे हुए लोग अनायास ही उसकी हँसी मे योगदान देने लगते थे,। करुणा बहुत हँसमुख थी, और हद से ज्यादा आकर्षक और मिलनसार थी। उसके परिचितों का कहना था कि शादी के बाद वह और खिल गई थी, और हरीश सदा उसकी ओर देख परिहास मे कहा करता था—"इनकी तो हँसी कभी रुकती ही नही!"

"क्यो रुकेगी भला?" भौहे टेढ़ी कर हरीश की ओर देखती हुई करुणा कहती—"हँसना कोई बुरी बात थोड़े ही है!"

इस पर हरीश कहता—"दूसरे नजर लगा दे तो?"

"नजर क्यों लगायंगे?"

"सोचेगे कि चिन्ता और दुख से भरी इस दुनिया में करुणा ही सदा किस खुशी मे मस्त हो निर्मल झरने की तरह खिल-खिल करती रहती है!"

"सोचने वाले हजार तरह की बातें सोचा करते है। उनके विषय म विचार करना व्यर्थ है!" इतना कह करुणा फिर हँस पड़ती।

"सचमुच यह बात है भी कितनी स्वाभाविक!" गम्भीर हरीश और भी गम्भीर हो कहता—"आखिर तुम्हे कौन सी ऐसी चीज मिल गई है कि तुम्हारी खुशी इस तरह फूटी पडती है?"

"मुझे एक अत्यन्त अनमोल चीज मिल गई है", करुणा चुटकियाँ बजाती हुई कहती—"और सबमे अधिक खुशी की बात, तो यह कि वह अनमोल रत्न मेरा ही है, सिर्फ मेरा!"

"कौन-सा अनमोल रत्न है वह ? जरा मैं भी तो सुनूं !"

"तुम सुनोगे !" विस्मय का नाट्य करती हुई करुणा कहती—"क्या करोगे सुन कर !"

"क्यों, क्या मुझे इतना भी अधिकार नहीं ?"

"अधिकार तो तुम्हें मेरे तन-मन-धन सभी पर है। पर लोक-चतुर स्त्रियाँ अपनी निधि पति से छिपा कर रखती है !"

"आखिर ऐसे छल की जरूरत ही क्यों पड़ती है ?"

"जिससे पति से नित्य नई निधि मिलती रहे। पत्नी के पास बहुत है, यह जान वह देने में दुविधा करने लगेगा न !"

"और इस प्रकार प्रेम से नहीं, वरन् कपट से अपनी निधि बढ़ाने वाली ही स्त्रियों का अनुसरण तुम भी करती हो, करुणा ?"

"मुझे इसकी कोई जरूरत नहीं है," करुणा कहती—"मेरे पास जो अनमोल रत्न है, उस पर एकाधिकार पा लेने के बाद फिर मुझे किसी और चीज की इच्छा ही नहीं रही ! मेरे उस अनमोल रत्न को तुम अच्छी तरह जानते भी हो।" करुणा के ओठों पर मुस्कान की एक रेखा खिंच आती।

"मैं तो नहीं जानता, करुणा ! तुमने बतलाया ही कहाँ !"

"मेरी वह अमूल्य निधि स्वयं तुम ही तो हो !" और इतना कह करुणा शर्म से आँखें नीची कर लेती। स्त्री चाहे कितनी भी शोख और चंचल क्यों न हो, अपना प्रेम प्रदर्शन करते वक्त उसकी आँखें लज्जा से बरबस झुक ही पड़ती हैं। वह अपने को रोक नहीं सकती। यह उसके वश के परे की बात है।

"दुत पगली !" हरीश कहता और मुस्कुरा देता।

करुणा की परिहास-भावना फिर जाग उठती। मचलकर कहती—"भला मैंने कौन-सी बात कह दी कि तुमने मुझे कुत्ते की तरह दुतकार दिया, और पगली कह दी ?"

हरीश हँस पड़ता । कहता—"तुम्हारी बातें कितनी प्यारी हैं, करुणा ! लेकिन तुम जो मेरी प्रशंसा करती हो, वह अतिशयोक्ति की सीमा पार कर गई है ।"

"नहीं, मैं बिलकुल ठीक कह रही हूँ ! तुम्हें पा लेने के बाद न कुछ और पाने की इच्छा रह गई है, न कोई अरमान बाकी रह गया है । यही मेरी खुशी का रहस्य है !" गम्भीर हो करुणा कहती ।

"किसी पर एकदम इतना भरोसा नहीं कर लेना चाहिये, करुणा !" हरीश शिक्षा देने के भाव से कहता—"कौन जानता है कि जिसे तुम अच्छे से अच्छा समझती हो, वही कभी बुरे से बुरा हो जाय । मानव-प्रकृति का कोई ठिकाना नहीं । मनुष्य कितना ही बुद्धिमान् क्यों न हो, वह अपने को सदा वश में नहीं रख सकता ।"

"मेरे देवता कभी ऐसा नहीं करेंगे !" दृढ़ स्वर से करुणा कहती—"मुझे उन पर गर्व है ! वह बहुत शान्त और गम्भीर हैं !

"किन्तु यह शान्तता और गम्भीरता तो कितनों की ही आँखों में खटकती है !"

"नासमझों को खटकती होगी", करुणा कहती—"चंचल और अशांत पुरुष बहुत बुरे होते हैं । कोई भी स्त्री वैसा पति नहीं पसन्द करती । गम्भीरता तो बड़प्पन का और शान्तता समझदारी का लक्षण है ।"

"मैं तुमसे तर्क में नहीं जीत सकता, करुणा !" हरीश कहता—"पर इतना जरूर कहूँगा कि विधाता भी कम ईर्ष्यालु नहीं है । वह भी किसी की बहुत हँसी-खुशी बर्दाश्त नहीं कर सकते !"

"क्या बिगाड़ा है विधाता का हमने ?" इतना कह करुणा हँस देती ।

उस दिन शाम को बात ही बात में जब हरीश ने करुणा की उन बातों की चर्चा मुझसे की, तो मैंने कहा—"दुनिया में बहुत सी ऐसी

बातें हैं, जिनके होने न होने में मनुष्यों का कोई हाथ नहीं रहता। मनुष्य को सब-कुछ संयोग या भगवान के हाथ छोड़ देना पड़ता है। अच्छे स्वभाव की साध्वी पत्नी पाना भी वैसी ही बातों में से एक है। और इस मामले में विधाता ने तुम्हारे साथ हद से ज्यादा पक्ष-पात किया है। वैसी साध्वी और स्नेहमयी पत्नी पा तुम जीवन में सुखी रह सकोगे, इसका मुझे पूर्ण रूपसे विश्वास है।"

हरीश एक निर्मल और निर्दोष हँसी हँस कर रह गया था।

... ...

समय की कसौटी ने सिद्ध कर दिया कि मेरा अनुमान गलत था। हरीश-जैसा शान्त और सच्चरित्र युवक करुणा जैसी स्नेहमयी पत्नी के साथ भी सुखी जीवन न व्यतीत कर सका। सचमुच विधाता उसके सुखी जीवन को देख ईर्ष्या से भर उठे। कठिनाइयों और परेशानियों से भरे पुरुष-जीवन को सरस और रोचक बनाने के लिए ही शायद विधाता ने स्त्री-जाति की सृष्टि की होगी। पर फूल के साथ काँटे भी पैदा करने की शायद ईश्वर को आदत-सी पड़ गई है। शायद उन्होंने यह विधान कर दिया है कि अच्छी-से-अच्छी स्त्री भी समय-समय पर पुरुष के कष्ट का कारण बनती रहे। तभी सीता-जैसी आदर्श पत्नी पा कर भी राम सुखी न रह सके।

उस घटना के लिये किसे उत्तरदायी कहा जाय, इस प्रश्न का उत्तर दुरूह है। पर भगवान ने मुझे निमित्त बनाया इसका दुःख मुझे जीवन भर रहेगा। न जाने मैंने पूर्वजन्म में ऐसा कौन-सा पाप किया था, जिसके कारण मुझे ऐसी घोर मानसिक वेदना मिली। मैंने बहुत प्रकार से उस घटना पर गौर किया और हर पहलू से देखने पर भी मैंने अपने को पूर्णतः निर्दोष ही पाया। पर अपने को निर्दोष कह मैं किसी दूसरे को दोष देना नहीं चाहता। किसी का दोष न रहने पर भी

इतनी बड़ी घटना घट गई, जिसके कारण एक हरा-भरा घर उजड़ गया, उसे परिस्थितियों के षड्यन्त्र के सिवा क्या कहा जा सकता है। सचमुच मनुष्य कितना परवश है, हजार कोशिश करने पर भी घटनाओं के प्रवाह को रोकने की ताकत उसमें नहीं है। एक हल्के तिनके की तरह प्रवाह में बहते रहने के सिवा वह कुछ नहीं कर पाता।

कितना अशुभ था वह दिन और कैसी मनहूस थी वह घड़ी! पर उस दिन को मनहूस कहने की गुस्ताखी भी मैं कैसे कर सकता हूँ? वह होली का दिन था। वह होली, जिस दिन सारा भारत खुशियाँ मनाता है। जीवन की कितनी रंगिनियाँ लिये आती है यह होली! प्रत्येक युवक हृदय आनन्द की एक विचित्र अनुभूति से भर जाता है उस दिन। हम इसके अपवाद न थे। उस दिन दोहपहर के बाद हरीश के यहाँ हम लोगों की मंडली जमी थी। मेरे और छाया के सिवा हरीश के कुछ और सम्बन्धी भी उपस्थित थे। हास-परिहास का बाजार गर्म था।

कुछ देर तक मैं भी हँसी-मजाक में योग देता रहा। सहसा मेरे सिर में बहुत तेज दर्द शुरू हो गया। बिना कुछ कहे मैं वहाँ से उठ खड़ा हुआ। हरीश ने पूछा, तो कह दिया कि कुछ देर में फिर आऊँगा। मैंने सोचा, सिर दर्द ही तो है, कुछ आराम करने से ठीक हो जायगा। हरीश मेरे पीछे-पीछे कमरे से बाहर आया, सिर दर्द की बात सुन बोला—"बहुत दर्द है क्या?"

"सिर फटा जा रहा है," मैंने कहा—"बाम है तुम्हारे पास?"

"तुम यहीं आराम करो। मैं बाम देखता हूँ।" इतना कह हरीश मुझे कमरे में छोड़ चला गया।

मैं उसके कमरे में ही जा उसकी चारपाई पर पूरा सिर तक चादर तान लेट गया। दर्द बहुत जोर का था।

करुणा, छाया आदि उस वक्त दूसरे कमरे में बातें कर रहे थे।

सहसा आँखें बन्द किये-किये ही मैंने महसूस किया कि कोई तेजी से दौड़ा हुआ आ कर कमरे में घुस पड़ा, और एक तेज झटके के साथ दरवाजे बन्द कर भीतर से सिटकिनी लगा दी। फिर वह हाँफता हुआ, मेरे शरीर से लिपट गया, और प्रगाढ़ आलिङ्गन पाश में बाँध लिया। फिर मुझे यह आवाज सुन पड़ी—"अजी, उठो भी! यह कौन-सा सोने का वक्त है। देखो तो मोहन बाबू को.. ...."

मैंने चौंक कर चादर से सिर बाहर निकाला और देखा, तो करुणा मेरे शरीर से लिपटी बोल रही है। मैं स्तम्भित रह गया। उस अप्रत्याशित घटना के कारण सिर दर्द की हालत में भी मैं शीघ्रता-पूर्वक उठ खड़ा हुआ। मुझे देख करुणा भी बिजली के वेग से छिटक खड़ी हुई। क्षण भर में ही उसका चेहरा बिलकुल पीला पड़ गया था, मानो शरीर का सारा खून सूख गया हो। एक आहत हरिणी की तरह व्यथित वह जमीन की ओर ताक रही थी।

सहसा किसी ने दरवाजे पर दस्तक दी। मैंने दरवाजा खोल दिया। बाम की शीशी हाथ में लिये हरीश अन्दर आया। अन्दर का दृश्य देख कर भौंचक-सा रह गया मानो उसके सिर पर बिजली गिर पड़ी हो। किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो उसने एक बार मेरी ओर देखा, और एक बार करुणा की ओर। फिर अस्त-व्यस्त बिछौने पर बाम की शीशी फेंक उल्टे पाँव वापस लौट गया।

इतनी सारी बातें एक मिनट के अन्दर हो गई। हरीश के जाने के बाद भी हम एक मिनट तक चुप-चाप ज्यों-के-त्यों खड़े रहे। फिर मैंने कहा—"कहाँ गया हरीश? देखिये तो सही!" और करुणा मशीन-चालित यन्त्र की तरह कमरे के बाहर चली गयी। मैं अपने सिर पर हाथ रख वहीं बैठ गया। मेरा सिर चक्कर खाने लगा।



अन्दर आया । अन्दर का दृश्य देख कर भौंचक-सा रह
के सर पर बिजली गिर पड़ी हो । किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो
मेरी ओर देखा और एक बार करुणा की ओर ।

मुझे सभी बातें दुःखद और अटपटी-सी लग रही थी। मेरा मस्तिष्क काम नहीं कर रहा था

सहसा मुझे करुणा की चीत्कार सुन पड़ी। मैं आवाज को लक्ष्य कर दौड़ता उस कमरे में गया। वहाँ का दृश्य देख मेरे मुख से निकल पड़ा—"यह तुमने क्या किया, हरीश ?" और मैं डाक्टर के यहाँ दौड़ गया।

... ...

वह एक साधारण घटना का असाधारण परिणाम था। मोहनलाल रिश्ते में हरीश के छोटे भाई लगते थे, उन्होंने करुणा के मुख पर गुलाल मलना चाहा था, करुणा छिटक कर भागी थी। स्वभावतः वह भाग कर अपने और हरीश के निजी कमरे में आ गई थी। भीतर से दरवाजे उसने बन्द कर लिये थे। किसी को अपनी चारपाई पर लेटे देखकर स्वभावतः उसने समझा था कि हरीश सोया है। फलस्वरूप वह मुझसे लिपट गयी थी।

हरीश मेरे लिये बाम लाने बाजार चला गया था, इसकी खबर करुणा को न थी। लौटने पर दरवाजा बन्द देख कर सोचा होगा कि शायद शोरगुल से बचने के लिये मैंने दरवाजा बन्द कर लिया होगा। उसने दस्तक दी। कमरे के अन्दर आ उसने जो दृश्य देखा वह वास्तव में बहुत रहस्यपूर्ण और सन्देहकारक था। मेरी और करुणा की घबरायी मुद्रा, अस्त-व्यस्त बिछौना आदि भले से भले आदमी को विचलित कर देने को काफी थे। उस पर भी हरीश हद से ज्यादा भावुक था, और करुणा पर उसे अडिग विश्वास था। जिस प्रकार मनुष्य जितने ऊँचे से गिरता है, उतनी ही उसे अधिक चोट लगती है, उसी प्रकार जितना अधिक विश्वास नष्ट होता है, उतना ही अधिक सदमा होता है।

विधाता की भूल

हरीश अपने को न सँभाल सका। पश्चात्ताप की भावना में भरी करुणा जिस वक्त हरीश के निकट पहुँची, उसे उसके हाथ में जहर की शीशी नजर पड़ी। उसने लपक कर उसका हाथ पकड़ लिया और बिलखती हुई हुई बोली—"इतने निष्ठुर न बनो! इतनी बड़ी सजा मुझे मत दो! कुछ मेरी भी सुन लो!"

पर हरीश तो मानो उस वक्त भारी नशे में था। उसने एक झटके में अपना हाथ छुड़ाते हुए कहा—"दूर हटो!" और शीशी का जहर पी लिया था।

करुणा एक भीषण चीत्कार कर बेहोश हो गई थी। सारा घर उस कमरे की ओर दौड़ गया था।

रही-सही उम्मीद भी डाक्टर ने तोड़ दी। हरीश एक दफा आँख खोल क्रोध, घृणा और उपेक्षा की दृष्टि से मुझे देख कर बोला "तुम्हें तो सिर दर्द कभी नहीं होता था, रमेश! यह रहस्यमय सिर दर्द शायद मेरी मौत का पैगाम लेकर आया था!"

"तुम्हें भारी गलतफहमी हुई, हरीश!"

"चुप रहो!" हरीश ने कहा। और अपनी आँखें बन्द कर लीं। करुणा की ओर उसने एक नजर देखा तक नहीं। उसकी आँखें फिर नहीं खुलीं।

करुणा की हँसी फिर नहीं लौटी। एक दिन में उसके जीवन में घोर परिवर्तन हो गया। उसके बाद दो वर्ष तक वह करुणा की मूर्ति बनी उस मकान में रही। कभी वह मुझसे एक शब्द भी नहीं बोली। उसे देखते ही मुझे रोना आ जाता था। मैं उसकी दृष्टि सहन नहीं कर सकता था।

जब उसका स्वास्थ्य बहुत गिर गया और वह खाट से लग गई, तो उसके पिता उसे राँची ले गये। वह अपनी इस अभागिन और

दुखिया बेटी की काफी देखरेख और हिफाजत करने लगे। करुणा के चले जाने पर, छाया ने एक निश्चिन्तता की साँस ली, मानो उसके पति के ऊपर से करुणा के साथ एक अशुभ छाया हट गई।

उसके बाद आज छः वर्षों के बाद करुणा फिर दिखाई दी थी। शायद वह पिछली रात राँची से वापस लौटी थी। उसे देखते ही उस घटना की स्मृति फिर हरी हो गई।

... ...

यों मैं सिनेमा का शौकीन नहीं हूँ, पर उस दिन कुछ मित्रों के साथ सेकेण्ड शो देखने चला गया था। लौटते वक्त करीब एक बज रहा था। मैं अकेले ही अपने घर की ओर लौट रहा था। हरीश के मकान के निकट से गुजरा, तो मैं ठिठक गया। मुझे लगा कि करुणा किसी से बातें कर रही है। मैं चौंक पड़ा। मैं जानता था कि नौकर-चाकर के सिवा इस मकान में और कोई नहीं रहता। करुणा का भाई उसे पहुँचा कर दो रोज बाद ही लौट गया था। मेरी उत्सुकता जगी। मैं दरवाजे के निकट खड़ा हो सुनने लगा। करुणा कह रही थी—"मेरे नाथ, इस प्रकार घृणापूर्ण दृष्टि से मेरी ओर मत देखो! मैं सब कुछ सह सकती हूँ, पर तुम्हारी ओर से उपेक्षा मेरे लिए असह्य है! मैं उस उपेक्षा और घृणा की पात्री नहीं हूँ, स्वामी! मैं सदा तुम्हारी थी, सदैव तुम्हारी रहूँगी! जीवन में, मृत्यु में, स्वप्न में, जाग्रतावस्था में, सदैव मुझे सिर्फ तुम्हारी ही सुधि रहेगी! अनजान में यदि मुझसे कोई दोष हो गया हो, तो मुझे क्षमा कर दो, स्वामी!"

करुणा कुछ देर रुकी। फिर बोली—"तुमने मुझे कुछ कहने का मौका नहीं दिया, स्वामी! काश, तुम मुझे कुछ कहने का अवसर देते। पर इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं! सब मेरी..."मैं अधिक कुछ न सुन सका। वहाँ से तत्क्षण हट गया।

उसदिन रात भर मुझे नींद नहीं आई। रह-रह कर मेरे हृदय में एक टीस-सी उठती, और मैं व्यथित हो जाता।

छाया से मैं करुणा के विषय में बातें नहीं करता : वह इसे नहीं सहन कर सकती। उसमें कोई ईर्ष्या की भावना नहीं है, केवल मेरे प्रति मगलभावना है। इसी से मैं कुछ नहीं कहता।

एक दिन मैं अपने को रोक न सका। पूछ ही बैठा—"करुणा यहाँ कब तक रहेगी ?"

"नहीं मालूम तुम्हें ?" ताज्जुब से छाया बोली।

"नहीं !"

"मैंने उससे पूछा था कि वह इतने बड़े वीरान मकान में अकेले क्यों रहती है, तो उसने कहा कि जब तक अपने पति को अपने मन की बातें वह न बता देगी, उसे चैन नहीं आयगा। वह रोज उसी चारपाई के पैताने बैठ अपनी बातें कहती रहेगी। कभी तो वह सुन लेंगे। जब तक वह नहीं सुनेंगे, वह कहती रहेगी। मैंने उसे बहुत समझाया, पर वह कुछ नहीं सुनती।"

मेरी आँखें बरबस भर आईं।

"अब अधिक दिन न बचेगी वह !" दुख भरे स्वर में छाया बोली —"पागलपन के लक्षण तो उसमें आ गये है।

"ईश्वर उसे शीघ्र शांति दें।" कहते कहते मैंने एक :निश्वास लिया। मेरी आँखो मे दो बूंद आँसू टपक पड़े।

———o———

पराजय

यह उस जमाने की बात है जब भारत के राजनैतिक गगन में बादल के टुकड़े छा गये थे। धार्मिक क्रान्ति अपना अमिट चिह्न छोड़ गयी थी। जहाँ पहले राजनैतिक शक्तियाँ केन्द्रित थीं, वहाँ बौद्ध-विहार और जैन मन्दिर खड़े थे। सर्वशक्ति-शाली मगध, प्रजातन्त्र वैशाली और मिथिला के आँगन में बौद्ध-विहारों की इतनी अधिकता थी कि लोग व्यंग्य-पूर्वक इस भू-भाग को बिहार के नाम से पुकारने लगे थे।

मगध के संन्यास के बाद भारत का राजनैतिक क्षेत्र सूना पड़ा गया। शक्तियाँ अधिक पनप न सकीं। लोगों की चेष्टाएँ निष्फल गईं। विदेशियों की बन आई। वह शूरता, वीरता तथा आनबान और शान थी नहीं, जो ग्रीकों के उन्नत भाल भी मगध-सम्राट् के चरणों पर झुका देती थी। भारत पराधीन हुआ।

मगध के दक्षिण में एक लम्बा-चौड़ा जंगल था। वह जंगली जानवरों और आदिम निवासियों से भरा था। विदेशी शासकों ने वहाँ एक विश्वविद्यालय की स्थापना की; जहाँ राजकुल, उच्चाधिकारियों तथा धनिकों के पुत्रों को अस्त्र शस्त्र की विविध शिक्षा दी जाती थी।

इसी विश्वविद्यालय में एक दिन श्री वर्मा का आगमन हुआ। श्री वर्मा पाटलिपुत्र के सबसे धनिक नागरिक का पुत्र था। यद्यपि पाटलिपुत्र अब पहले का-सा संसार का सर्वश्रेष्ठ संपन्न नगर न था, तथापि इसकी महत्ता का विशेष ह्रास न हुआ था। वहाँ के एक धनिक का पुत्र होने के नाते श्री वर्मा विश्वविद्यालय में शिक्षा पाने का अधिकारी था।

आगमन के पश्चात कुछ दिनो तक श्री वर्मा लोगों की चर्चा का विषय था। ऐसा प्रसन्नवदन, गठीला शरीर, विशाल बाहु और चौड़ी छाती सचमुच लोगो की ईर्ष्या का पात्र था। कक्षा मे एक ओर घोड़े पर सवार उस समय का सबसे चतुर विद्यार्थी हिरोमन सोच रहा था, मैं श्री वर्मा से जरूर मैत्री करूँगा।

(२)

समय बीतते देर नहीं लगती। कई वर्ष बीत गये। एक दिन संध्या के लालिमा-युक्त सुनहले प्रकाश के बीच दो सुन्दर और साहसी नवयुवकों को बिठाये दो घोड़े बढ़े जा रहे थे। दोनो के चेहरे थकावट से मुरझा गये थे, और जगह-जगह पर जख्म लग जाने के कारण दोनो शिथिल हो गये थे।

आज विश्वविद्यालय की प्रतिद्वंद्विता थी। अन्तिम कक्षा के विद्यार्थी गुरु के सामने अपनी चतुरता और निपुणता का प्रदर्शन कर उनकी शुभेच्छा के साथ विदा होनेवाले थे।

श्री वर्मा और हिरोमन इसी प्रतिद्वंद्विता में भाग लेकर विश्राम के लिए किसी एकान्त स्थान की ओर जा रहे थे।

एक झुरमुट की ओट में दोनो बैठ गये। श्री वर्मा ने अपने कर्त्तब से सभी लोगों को चकित कर दिया था। द्वन्द्व में उसकी चतुरता देख शिक्षक तक आश्चर्य-चकित रह गये थे। भीमवेग से उसका घोड़ा जिस ओर बढ़ता था, उसके बर्छे की नोक पर सभी खुद झुक जाते थे। उस अश्व में भी न मालूम कहाँ की विद्युत्-शक्ति आ जाती थी।

हिरोमन की वीरता में भी सन्देह न था। श्री वर्मा के समान उसकी योग्यता के कारण लोग उसकी भी इज्जत करते थे। पर उसमें सिर्फ एक कमजोरी थी। द्वंद्व में वह बुरी तरह झेंप जाता था। एक

साधारण विद्यार्थी के सामने जब वह घोड़े से गिर पड़ा तो शिक्षक ने जैसी उपेक्षा-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा था, उसे याद कर वह अब भी पानी-पानी हो जाता है। यही एक कमजोरी उसके अन्य सभी कर्तबों पर पानी फेर देती थी।

हिरोमन दुखित-सा दीख पड़ा। निराशा भरे स्वर में श्री वर्मा से उसने कहा—मित्र, न मालूम मैं क्यों उस समय असमर्थ-सा हो जाता हूँ। मेरी सारी शक्ति मानों एकत्र हो कहीं लुप्त हो जाती है।

श्री वर्मा ने ढाढ़स देने के विचार से कहा—पर बन्धु, इसमें इतनी निराश होने की क्या बात है। निरन्तर अभ्यास से तुम अपनी निर्बलता पर अवश्य विजय प्राप्त करोगे। तुम्हें धैर्य रखना चाहिए।

हिरोमन विह्वल हो उठा,—बोला—पर जब गुरुजी की वह तीक्ष्ण दृष्टि याद आती है, तब तो हृदय क्षुब्ध हो जाता है। फिर मित्र, तुम हमारे घनिष्ठतम बन्धु हो—सकोच फिर क्यों—जीवन में न मालूम कितनी ऐसी घड़ियाँ आयेंगी, जब मेरी यही अनभिज्ञता मुझे क्षति पहुँचायेंगी, और शायद यही कभी मेरे संकट का कारण न हो जाय।

श्री वर्मा बोला—मित्र, मुझे घमडी न समझो, यदि मैं कहूँ कि मेरी शक्ति का तुम पूरा भरोसा रखो। इस विश्वविद्यालय में शस्त्र-विद्या पाने से जितनी प्रसन्नता हुई, उतनी ही प्रसन्नता तुम जैसा मित्र पाने की भी है। मैं तुम्हारी सहायता को सदा तत्पर रहूँगा।"

'मुझे विश्वास है वर्मा, पर भूलो नहीं, तुम्हारे जीवन का ध्येय क्या है। तुमने मातृभूमि की पराधीनता को दूर करने का निश्चय किया है। पर मेरा क्षेत्र भिन्न है। मित्र, इस प्रश्न को मैं हमेशा टालता रहा। क्षमा करना वर्मा, तुम भारत के भावी महान पुरुष हो। क्या तब तुम अपने महान कार्य के रहते हुए भी मुझ क्षुद्र प्राणी की पुकार आवश्यकता पड़ने पर सुन सकोगे?'

"ऐसा न कहो मित्र, देश की दुर्दशा देख मेरा हृदय जरूर जल जाता है, पर मै अपने सिर नेतृत्व का भार न लूगा। मुझे अपने पिता के पथ का अनुसरण करना है। फिर मुझमें मगध का रक्त दौड रहा है। मेरा वचन झूठा न जायगा। विश्वास करो, संकट काल में तुम्हारी पुकार सुन मैं हजार काम छोड आऊँगा। तुम एक वीर सरदार के पुत्र हो, पर मुझे भूलना नहीं।'

यह एक साथ दोनों की अन्तिम रात्रि थी। दूसरे दिन वर्मा पाटलिपुत्र को रवाना हुआ और हिरोमन उज्जैन की ओर। शिक्षक के अलावा सभी लोग उसका सच्चा परिचय यही समझते थे कि उज्जैन के एक वीर सेना-नायक का वह पुत्र था। उसका अभिन्न मित्र श्री वर्मा तक इससे ज्यादा कुछ न जानता था।

कुछ ही दिनो में श्री वर्मा देश का सबसे बडा योद्धा के रूप मे मशहूर हो गया।

(३)

हरिपाल मगध का एक लोकप्रिय नागरिक था। उसकी लोकप्रियता का कारण उसका शूरवीर या बड़ा विद्वान होना न था। पर उसमें वे गुण थे, जो मनुष्य और पशुओं की विभिन्नता प्रकट करते हैं। उसका हृदय सरल था। मधुरभाषी हरिपाल का स्नेह कोष छोटे-बडे, ऊँच-नीच सभी के लिए खुला था। उसका सहानुभूति से भरा हृदय देश प्रेम मे ओतप्रोत था। इन गुणों के एकत्र समावेश ने उसे सर्वप्रिय बना दिया था।

उस दिन नये वर्ष का प्रथम दिवस था। समूचा देश उन्मत्त मना रहा था। पाटलिपुत्र में खुशियाँ छाई थीं। नगरवासी लाज-लज्जा से मुक्त हो चारो ओर विचर रहे थे।

हरिपाल अपने परिचित समूह को मधुरवाणी से सन्तुष्ट कर बढ़ा जा रहा था। एक मकान के निकट पहुँचा ही था कि एक बालक आ उसके पैरों में लिपट गया; हरिपाल उसे गोद में उठा प्यार से बोला—क्यों रे दुष्ट, तुझे क्या चाहिये ?

बालक खिलखिलाकर हँस पड़ा। उसका कन्धा झकझोरता हुआ बोला—मुझे भी ले चलो। तुम कहाँ जा रहे हो; मैं भी साथ चलूंगा।

हरिपाल उसके गाल में एक हलका चपत लगाकर बोला—मुझे बहुत दूर जाना है, तू न जा सकेगा।

बालक इतनी आसानी से माननेवाला न था। गले से लिपटकर बोला—मैं कुछ न सुनूंगा। माताजी और पिताजी से मैं पूछ चुका हूँ। दूसरे दिन फिर तुम नहीं आओगे।

बालक उसके एक घनिष्ठतम मित्र का पुत्र था। मित्र ने हँसकर उसका स्वागत किया। जब वह चलने लगा तो बालक अपने पिता की स्वीकृति पा उसके पीछे दौड़ा।

(४)

चलते-चलते हरिपाल शहर के एक ओर एकान्त पथ पर चला आया। दोनों ओर तरह-तरह के फल के वृक्ष लगे थे। प्राकृतिक दृश्य का आनन्द उठाता, बालक का हाथ पकड़े हरिपाल बढ़ता जाता था।

अचानक बालक की दृष्टि एक वृक्ष की एक डाली में लटकते एक पके फल पर गई। चंचल बालक ने सडक के किनारे से एक पत्थर ले वृक्ष की ओर चलाया। फल नीचे आ गिरा। बालक ने प्रसन्नतापूर्वक उसे उठा लिया।

अचानक बगल से एक कर्कश आवाज ने दोनों को चौंका दिया। उन्होंने देखा आठ विदेशी सैनिक एक सन्दूक-सा बडे बक्स को घेरे

पश्चिम की ओर बढ़े जा रहे थे। उस ढेले से एक सैनिक को हल्की चोट लगी थी और रक्त की कुछ बूंदें निकल आई थीं।

एक सैनिक ने डपटकर कहा—सम्राट के प्रधान सेवकों पर कायरता-पूर्ण आक्रमण कर इसने उनका अपमान किया। यह दण्ड का भागी है। इसे पकड़ लो।

हरिपाल को स्थिति की विषमता का ज्ञान हुआ। अज्ञान बालक की ओर से उसने पश्चात्ताप प्रकट किया और उनसे शांत होने की प्रार्थना की।

शासन-मद में चूर विदेशियों के तेवर चढ़ गये। एक गरजकर बोला—तुम्हारे शांति के उपदेश की यहाँ जरूरत नहीं। विश्वासघाती भारतीयों का भरोसा नहीं। अगर इस बालक का अपराध है तो वह भी दण्ड का भागी है। सच्चा न्याय दुष्टों का दमन करना जानता है।

हरिपाल का स्वाभिमान जाग उठा। उसने अपने को सँभालने की कोशिश की—छोटी बातों को बढ़ाने से कुछ लाभ नहीं। कुछ कहने के पहले सोच लेना आवश्यक है, इसे भी न भूलना चाहिये।

इसके पहले कि हरिपाल सँभले, चार सैनिकों ने उसे पकड़ लिया। बालक अपने अपराध पर क्षुभित था। वह हरिपाल से जा लिपटा। एक सैनिक ने बल-पूर्वक उसे हटा एक ओर गिरा दिया। अपमानित और पीड़ित बालक वेदना को दबाकर उठ खड़ा हुआ। उसने करुणा-भरी तीक्ष्ण दृष्टि से उस सैनिक की ओर देखा और हरिपाल से चिपक गया। सैनिकों का सरदार घोड़े से उतरकर निकट आया। बालक को उठा बलपूर्वक ऊपर उछाल दिया और तलवार पर उसे रोक लिया। खून की फुलझड़ी छूटी और तलवार के दोनों ओर दो निर्जीव टुकड़े बिखर पड़े।

हरिपाल स्तम्भित हो गया। उसने आँखें मूंद लीं। क्रोधित स्वर में बोला—दुष्ट, पापी! तूने यह क्या किया! तुम श्वान से भी

बदतर हो। इस निर्दोष बालक पर हाथ उठाते शर्म न आई ? पामर !

दो सैनिकों की बर्छों की नोकें उनके दोनों पैरों में चुभा दी गयी। वेदना से कराहता हुआ वह गिर पड़ा। आठों सैनिक अपने घोड़े से उसे रौंदते हुए निकल गये।

(५)

संध्या होते-होते वह स्थान हरिपाल के सम्बन्धियों, मित्रों तथा पाटलिपुत्र के नागरिकों से भर गया। स्त्रियों के करुण क्रन्दन से वह स्थान गूंज उठा। रात्रि भयावह प्रतीत हो रही थी। नवयुवकों का खून उबल रहा था। आखिर वे उसी पाटलिपुत्र के निवासी थे, जहाँ चन्द्रगुप्त के चरणों पर ग्रीकों के उन्नत भाल झुके थे। ये उसी पाटली-पुत्र के नागरिक थे जहाँ से अशोक ने विश्व-विजय की थी। वे वहीं के वासी थे जहाँ के नागरिकों ने चक्रवर्ती समुद्रगुप्त का स्वागत किया था। वे उस प्रदेश के प्रधान नागरिक थे, जहाँ अजातशत्रु और जरासंध, स्कंदगुप्त तथा महापद्मनन्द हुए थे। उनके हृदय में पराधी-नता के प्रति विद्रोह का भाव था। दिल में जख्म था, भले ही वह सूख गया हो। पर एक निर्दोष बालक के दो टुकड़े और एक सरल नागरिक की बर्बरता-पूर्ण हत्या ने उनके भाव जगा दिये, जख्म हरा कर दिया। एक स्वर से वे चिल्ला उठे, ऐसा अत्याचार हमें सहन नहीं। इस पराधीनता की बेड़ी से छुटकारा चाहिये। ऐसे अन्यायी का शासन हमें सह्य नहीं।

प्रान्त में एक लहर-सी दौड़ गई। श्री वर्मा की अध्यक्षता में नवयुवकों का दल जम गया। वर्मा जैसे शांत युवक को इस शक्तिशाली लहर से बचकर रहना मुश्किल हो गया। और आखिर उसके हृदय में तो भावनाएँ थीं ही।

देश में बिजली-सी दौड़ गयी । विद्रोह का डंका बजा । पागलों का बड़ा दल राजधानी की ओर बढ़ा ।

(६)

राजधानी तक खबर पहुँची । विदेशी शासक काँप उठे । बहुत देर हो चुकी थी । विद्रोहियों का सामना करने के अलावा कोई मार्ग न था । युवराज की अध्यक्षता में एक बड़ी शाही सेना रवाना हुई ।

दोनों सेनाएँ मिली । उसी प्रकार जैसे विभिन्न दिशाओं से आती हुई दो नदियाँ संगम-स्थान पर मिलती हैं । पर युवराज को ऐसा मालूम हो रहा था कि नदी के समान उसकी सेना भारतीयों के समुद्र के समान सेना में अपना अस्तित्व खो रही थी । भारतीयों के हृदय में, अपमान की ज्वाला जल रही थी, देश-प्रेम की आग धधक रही थी शक्ति और धन के बल पर प्राप्त काफिरों की सेना को वे मूली की तरह काट रहे थे ।

युवराज ने सुना, शत्रुओं की सेना का अध्यक्ष श्री वर्मा है । उसके हृदय में एक कसक उठी, दिल में भावनाएँ उठी और विलीन हुई । 'श्री वर्मा'---उसने इस नाम को कई दफे कहा, जैसे कुछ कल्पना कर रहा हो ।

दोनो तरफ की काफी सेनाएँ खप चुकी थी । अब यह निश्चय हुआ था कि दूसरे दिन दोनो ओर के चुने हुए योद्धा आगे रहेंगे । उन्ही के ऊपर तो समूची सेना निर्भर है । वे ही तो सब कुछ है, अन्य यंत्र-चालित मशीन के समान हैं । यही सोचकर ऐसा विचार हुआ कि इने-गिने योद्धाओं का द्वन्द्व आगे होगा, अनगिनत आत्माओं की हानि से क्या लाभ ?

रात्रि को आठ बजे सेनापति श्री वर्मा को एक दूत ने एक पत्र दिया । उसमें लिखा था---

मित्र,

आशा है मुझे भूले न होगे । मुझे तुमसे कुछ कहना है । मुझे विश्वास है, इस दूत के बताये स्थान पर आज मुझसे अवश्य मिलोगे ।

तुम्हारा अभिन्न,

'हिरोमन ।'

अतीत घड़ियों की याद कर श्रीवर्मा की आँखें चमक उठी । उसी दम वह अकेला दूत के साथ चला ।

वर्षों के बाद दोनो की भेंट हुई थी । दोनों दूसरे से लिपट गये ।

दूसरे दिन सुबह तक श्रीवर्मा न लौटा । सेनामें हलचल मच गई । इतने मे एक दूत ने आकर एक पत्र दिया । पत्र श्री वर्मा का था । उसने लिखा था—अनिवार्य कारणों से मैं अपने पद से त्याग पत्र देने को मजबूर हूँ । मैं अपने मित्र युवराज हिरोमन के साथ कल भारतीय सेना का मुकाबला करूँगा ।

"श्री वर्मा ।"

सारी सेना किंकर्तव्यविमूढ हो गई । श्री वर्मा ने विश्वासघात किया, वह देश-द्रोही बना, लोगों को आसानी से इस बात पर विश्वास न होता था । सारी सेना का उत्साह ठंढा पड़ गया । वही जो उनका नेता था, आज उनसे लड़ने को तत्पर था ।

. . . .

सुबह युद्ध शुरू हुआ । हिरोमन की रक्षा करता हुआ श्री वर्मा अपने देशवासियो को गिरा रहा था । लोग उसकी ओर देख कर चकित थे । उसका हाथ यंत्र की तरह चल रहा था । उसके चेहरे पर एक छाया-सी पड़ गई थी । कभी-कभी वह अस्थिर तथा विचलित हो उठता था ।

वर्मा के व्यवहार से उसकी सेना के लोगों का हृदय जख्मी हो गया था। वे लड़ रहे थे; पर लड़ने की उनमें ताकत न थी। वर्मा की कुशलता के सामने सभी योद्धा काम आ चुके थे। अन्त में उसके छोटे भाई जयवर्मा ने उस पर घातक प्रहार किया और स्वयं हिरोमन की बर्छी से धराशायी हुआ। सभी योद्धा काम आ चुके थे। अपनी सेना के आगे हिरोमन निर्भय खड़ा था।

... ...

रात के समय हिरोमन दीपक लेकर मृतकों में श्रीवर्मा की लाश ढूंढ़ रहा था। वह विजयी हुआ था, पर उसके चेहरे पर विषाद की छाया थी, गालों में दोनो ओर आँसु के चिह्न स्पष्ट थे।

... ...

भारतीय हारे, उनकी पराजय हुई। पर इस पराजय का कारण क्या था? क्या इनकी हार इसलिए हुई कि वे वीर न थे। या उनमे युद्ध-कुशलता न थी अथवा उनमें साहस की कमी थी!

और श्रीवर्मा, क्या वह सिर्फ देश-द्रोही और विश्वासघाती भर था!

संस्कार

उस दिन शाम को सुरेश लौटा तो सुधा को बहुत खुश पाया। सुधा ने लपक कर उसके हाथ से टोपी ले ली और जूते के फीते खोलती हुई बोली, "कपड़े बदल लो। हाथ-मुँह धोकर बैठ जाओ। मैं अभी चाय लाती हूँ।"

सुरेश चौकन्ना हो बोला, "बात क्या है? आखिर इतनी जल्दी की वजह?"

"जल्दी क्या?" अपनी आँखों के कोनों से सुरेश को देखती हुई सुधा बोली, "थके मांदे लौटे हो। नाश्ता तो जल्दी चाहिये ही।"

"सो समझा" सुरेश मुस्करा कर बोला, "लेकिन तुम में बिजली की-सी यह तेजी जो आ गई है वह बिना वजह के तो नहीं ही हो सकती है।"

"छोड़ो भी" तिनक कर सुधा बोली, "चलो बैठो, बहुत-सी जरूरी बातें करनी हैं आज।"

"ओह, समझ गया" सुरेश बोला, "मैं खुद तुम्हारी जरूरी बातें सुनने के लिये बेताब हूँ।"

कुछ ही क्षणों में नाश्ते की तश्तरी सामने रखती हुई सुधा बोली, "माँ की चिट्ठी आई है।"

"क्या?"

"तुम खुद पढ़ लो।" लिफाफा बढ़ाती हुई सुधा बोली।

सुधा पत्र पढ़ते समय सुरेश के चेहरे पर उतरते-चढ़ते भावों को पढ़ने की चेष्टा करती रही। पत्र समाप्त कर सुरेश ज्यों ही उसे तह करने लगा सुधा बोली, "क्यों क्या राय है तुम्हारी ?"

सुरेश ने एक दफा ध्यान से सुधा की ओर देखा, फिर बोला, "क्या तुमने सब कुछ मेरी ही राय पर छोड़ दी है ?'

"वाह खूब" सुधा फिर तिनकी, "भला बिना तुम्हारी राय के मैं कोई काम करती हूं।"

"नहीं, नहीं," सुरेश सँभल कर बोला, "ऐसा भी कहीं होता है। लेकिन बहुत-सी औरतों की आदत होती है कि वे करती तो हैं अपने मन की, लेकिन उस पर जबरन अपने पति की राय की मोहर ले लेती है।"

"हूं, आखिर पति अपनी राय की मोहर देते क्यों है ?"

"मजबूरी। वे करें क्या ? एक बहादुर मर्द जो अपने अफसर का सर फोड़ देने की हिम्मत रखता है वह भी अपनी बीबी से झगड़ा करने में बेहद डरता है।"

"छोड़ो अपनी लम्बी चौड़ी बातें" सुधा मुँह लटका कर बोली, "मैं वैसी औरत नहीं हूँ।"

"मैं मैं तुम्हारी बात थोड़े ही कह रहा हूं। तुम-सी औरतें है ही कितनी ? अच्छा यह तो बताओ क्या होता है कुम्भ मेला में ?"

"जैसे सीधे विलायत से आ रहे हो। इतना भी नहीं मालूम। साधू-सन्त आते है। संगम में स्नान होता है। तीर्थ-यात्रा का फल मिलता है।"

"क्या करोगी इतना पुण्य बटोर कर ? क्या भगवान से कोई खास अपील करनी है ?"

"क्यों नही ? ईश्वर से कौन नही माँगता है ? किसकी सभी इच्छाएँ पूरी हुई रहती है ?" सुधा गम्भीर हो बोली।

'कौन-सी ऐसी कमी महसूस कर रही हो तुम ? क्या तुम्हें और धन चाहिये ?"

"नहीं चाहिये मुझे धन-दौलत । ईश्वर ने मुझे जैसा पति दिया है, जैसा सौभाग्य दिया है मैं संतुष्ट हूँ ।" सुधा गर्व से भर ऊँचा कर बोली । पर सुरेश की आँखों से आँखें मिलते ही उसकी बड़ी-बड़ी सुन्दर आँखें झुक गईं और शर्म से उसके गोरे कपोल लाल हो गये ।

"तब ? फिर क्या चाहिये ?" सुरेश मुग्ध उसकी ओर देखता हुआ बोला ।

"धत्, मैं नहीं बोलती तुम से" सुधा उठने का उपक्रम करती हुई बोली, "तुम शरारत पर उतर आये हो ।"

"नहीं, नहीं, मैंने तो कोई शरारत नहीं की है" सुरेश हँस कर बोला, "अच्छा एक बात पूछूँ ?"

"क्या ?" सुधा ने पूछा ।

"तुम क्यों बच्चे के लिये परेशान हो ? जितने दिन बच्चे नहीं हो रहे हैं ईश्वर की मेहरबानी समझो । फिर तो बच्चों का ऐसा ताँता लग जायगा कि तुम परेशान हो जाओगी ।"

"मैंने कब तुमसे यह बात कही" सुधा उठ खड़ी हुई और तैश में बोली, "सीधे क्यों नहीं कहते कि तुम नहीं चाहते कि मैं प्रयाग जाऊं । यूँ ही बात गढ़े जा रहे हो । जो मन में आये चिट्ठी का जवाब दे दो । मैं कुछ नहीं कहूँगी अब ।"

"सुनो भी" सुरेश हाथ पकड़ उसे बैठाता हुआ बोला, "गुस्सा मत करो । जरा तुम्हीं सोचो, वहाँ कितना शोरगुल, कितनी भीड़, तरह-तरह की बीमारियाँ . . .।"

"मैं नहीं करती गुस्सा" सुधा बात काटती हुई बोली, "गुस्सा तो प्रयाग जाने की बात से तुम्हें हो गया है । सो अब मैं इसके बारे में

कुछ नहीं कहूँगी। तुम्हारी मर्जी नहीं तो मैं नहीं जाऊँगी। बस बात खतम। धक्का शोरगुल मुझे खुद पसंद नहीं।"

"देखो" सुरेश बहुत ही मुलायम स्वर में बोला "सुनो, मेला खत्म होने दो। मैं खुद तुम्हें वहाँ पहुँचा दूँगा। मुझे सिर्फ तुम्हारी तन्दुरुस्ती की फिक्र है।"

"मैं कभी नहीं जाऊँगी जी" सुधा दृढ स्वर में बोली, "कभी नहीं" और इतना कह सुधा तेजी से उठी और जब तक सुरेश रोके अंदर की ओर चल दी।

(२)

सुरेश एक मध्यम श्रेणी का श्रमजीवी व्यवसायी है। यूँ पहले से भी उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी, लेकिन शादी के बाद अचानक और अनायास ही उसके व्यवसाय में बहुत तरक्की हो गई। यही कारण है कि सुरेश सुधा को बहुत सुलक्षणा समझता था।

पति-पत्नी में बहुत प्रेम था। किन्तु अधिकांश सुन्दर और आकर्षक युवतियों की तरह सुधा भी बहुत नुनकमिजाज और नाजुक स्वास्थ्य की थी। तनिक भी अव्यवस्था, बदपरहेजी और परीशानी का सुधा के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर पड़ता था। इसीलिए सुरेश इस ओर से बहुत सचेष्ट रहता था।

सुधा के पिता की मृत्यु बहुत पहले हो गई थी। विधवा पर संपन्न माँ अपनी एकमात्र संतान पर बहुत आसक्त थी। चाहे किसी तरह का प्रोग्राम हो, सुधा को सम्मिलित किये बिना वृद्धा को चैन नहीं मिलता था। इसी परम्परा के अनुसार सुधा को प्रयाग चलने के लिये कहा गया था। उसी रात १२ बजे की गाडी से वृद्धा उस स्टेशन से गुजरने-वाली थी और यात्रा में सम्मिलित होने के लिये तैयार होकर स्टेशन आने के लिये सुधा से अनुरोध किया गया था। सुरेश की परीशानी

यह थी कि जब कभी ऐसे मौकों पर सुधा बाहर जाती थी तो जरूर बीमार होकर लौटती थी । सुधा को तो उससे तकलीफ होती ही थी सुरेश को भी चिन्ता और परीशानी का सामना करना पड़ता था ।

लेकिन सुधा के रुख को देख कर सुरेश के सामने यह बात साफ थी कि न जाने की बुद्धिमत्ता को समझना इस वक्त सुधा के लिये मुमकिन नहीं । यह एक निर्विवाद सत्य है कि बहुधा स्त्रियाँ बुद्धि या विचार के स्थान पर भावनाओं द्वारा परिचालित होती हैं ।

सुधा रूठ कर बैठी रहे यह भी सुरेश के लिये बरदाश्त के बाहर की बात थी । सहसा सुरेश गम्भीर हो गया "न जाने उसे कब अक्ल आयगी" वह मन ही मन बुदबुदाया, फिर एक निःश्वास ले बोला 'जैसी सरकार की मर्जी ।"

सुरेश ने घड़ी पर नजर दौड़ाई । आठ बज चुके थे । १२ बजे गाड़ी जाती थी । चार घण्टे बाकी थे । सुरेश तेजी से उठा और बिना किसी की मदद लिये, बिना शोरगुल किये एक होल्डआल में बिस्तर और एक सूटकेस में जरूरी कपड़े तरकीब से रख, कमरे में एक कोने में सूटकेस पर होल्डआल रख दिया । यह सब करने में उसे करीब ४० मिनट लगे । इसके बाद सुधा को खोजता हुआ वह अन्दर के कमरे की ओर गया । सुधा बिस्तर पर औंधे मुँह पड़ी थी । उसका शरीर कसमसा रहा था । शायद सुरेश का इन्तजार करते-करते वह ऊब गई थी । मान के वश में उसने पंखा भी नही चलाया था । उसका शरीर पसीने से सराबोर हो रहा था ।

सुरेश ने पंखा चला दिया और सुधा के निकट बैठ कंधा पकड़ उसे हिलाता हुआ बोला, "उठो और जल्दी तैयार हो जाओ । नौ बज रहे है । १२ बजे गाड़ी जानी है । वक्त कम है । उठो जल्दी करो ।"

सुधा सिर्फ कुनमुनाई। कुछ बोली नहीं। सुरेश ने जबरदस्ती उसे उठा कर बैठा दिया और बोला, "सुनती हो।"

"क्या है ?" सुधा तीव्र स्वर में बोली।

"देखो, जल्दी करो। जाना नहीं है ?"

सुधा ने साफ इनकार कर दिया। सुरेश ने बहुत समझाया। बोला, "गुस्से के कारण अपना प्रोग्राम चौपट मत करो। मुझ से गलती हो गई। माफ कर दो। आदमी से गलती हो ही जाती है।"

अन्त में उठ कर बैठती हुई सुधा बोली, "समय कम है। अब छोड़ो, इतनी जल्दी कुछ नहीं हो सकेगा।"

"तुम्हें सिर्फ भोजन करना और कपड़े बदलना है। बाकी सब तैयार है। चलो देख लो।"

होल्डआल और सूटकेस देख सुधा बोली, "यह सब किसने किया ?"

"मैंने।"

सुधा के ओठों पर मोहक मुसकान की एक रेखा खिंच गई। बोली, "वाह।"

भोजन के वक्त सुधा ने कहा, "अगर तुम्हारी मर्जी नहीं तो मैं नहीं जाऊँ। मैं गुस्से में नहीं कह रही हूँ। सच, मुझे जाने की कोई खास इच्छा नहीं है। बल्कि, मैं तो चाहती ही हूँ कि नहीं जाऊँ।"

"जरूर जाओ। मेरी यही मर्जी है। कभी-कभी घूम टहल आने से तबियत बहल जाती है। मैं तो यूँही मना कर रहा था।"

"तुम कहते हो तो चली जाऊँगी, वरना मुझे अब बिल्कुल इच्छा नहीं है।"

"खैर, मेरी ही मर्जी से सही। घूम तो आओ। लेकिन अपनी तन्दुरुस्ती का खयाल रखना।"

(३)

दस दिन बाद सुरेश शाम को दूकान से लौटा तो उसके हाथ में सुधा की एक चिट्ठी थी। बिना कपड़े बदले, सोफे पर पैर फैला वह बैठ गया और बड़े चाव से पत्र को फिर पढ़ने लगा। अन्य बातों के साथ पत्र में लिखा था, "कुम्भ मेला में साधू-संतों की भरमार है, शोर-गुल भी है, भीड़ और जमघट भी है, लेकिन मेरी तबियत नहीं लगती क्योंकि तुम नहीं हो। मन ऊब गया है। सोचती हूँ कब कोई ऐसी बात हो जाये कि मैं उड़कर प्रयाग से पटना पहुँच जाऊँ। हमलोगों के साथ ही माँ-बेटी का एक और परिवार ठहरा हुआ है। एक वृद्धा और उनकी बेटी, और इस युवती के बारे में एक बहुत ही विचित्र बात है। लेकिन नहीं, तुम खुद आकर इस बात को देखो। सच कहती हूँ तुम चकित रह जाओगे। बोलो, कब आते हो?"

पत्र पढ़ सुरेश संतोष की मुसकान मुस्कराता रहा। फिर सोफे से उठता हुआ बोला, "औरत, तुम खुद नहीं जानती कि तुम क्या चाहती हो।"

सहसा बाहर से डाकिये ने आवाज दी। डाकिये ने सुरेश के हाथ में जो तार दिया उसे पढ़ वह भौंचक रह गया। तार सुधा का भेजा हुआ था और उसमें माँ की मृत्यु का समाचार था।

दस मिनट के अन्दर सुरेश स्टेशन के लिये रवाना हो गया।

तार में दिये गये पते के मुताबिक सुरेश प्रयाग में स्टेशन से उत्तर सीधे अस्पताल पहुँचा। सुधा बेसुध-सी पड़ी थी, सुरेश ने उसे पुकारा तो आँखें खोल कुछ देर शून्य दृष्टि से बिना एक शब्द बोले उसकी ओर देखती रही और फिर आँखें बन्द कर लीं। उसके चेहरे पर मुर्दनी छायी थी। सुरेश ने महसूस किया कि माँ की मृत्यु का उसे गहरा सदमा हुआ है।

सुधा की सेवा-शुश्रूषा में लगी एक वृद्धा ने रो-रोकर उसे सारी कहानी सुनायी। वह भी अपनी बेटी के साथ गया से आई थी और सुधा और सुधा की माँ के साथ दारागंज के मकान में एक ही कमरे में ठहरी थी। उस दिन ठंढ बहुत ज्यादा थी। कमरे के दरवाजे और खिड़कियाँ बन्दकर वे चारो शाम ही को खा-पीकर कमरे में सो गई थी। कमरे को गर्म रखने के लिए मिट्टी के एक बर्तन में आग जला कर रख लिया था। रात को क्या हुआ, कुछ पता नहीं। सुबह देर तक जब वे नहीं उठे तो ६ बजे दरवाजा तोड़ा गया। धुआँ से कमरा भरा था और चारो बेहोश थी। सुधा की माँ और वृद्धा की बेटी तो अस्पताल पहुँचने के पहले ही मर गई। उन्हें लोग श्मशान ले गये। सुधा के साथ वृद्धा अस्पताल लाई गई। सुधा के कहे मुताबिक अस्पताल से उसे तार दिया गया।

सुरेश ने एक निःश्वास लेकर कहा, "कुम्भ में आप सभी कुछ खोने के लिये आयी थीं, सुधा ने माँ खोयी, आपने बेटी खोयी। ईश्वर की यही इच्छा थी।"

(४)

इस घटना को बीते एक सप्ताह हो गया। लेकिन प्रयाग में सुधा ने अपनी जो प्रफुल्लता और चपलता खो दी थी वह अभी तक वापस नहीं आ सकी थी। वह बहुत गंभीर और सुस्त रहती थी। अपनी वेश-भूषा और खानपान की ओर से वह लापरवाह रहती थी। सुरेश को उसके व्यवहार से एक अजीब प्रकार की निर्लिप्तता का भान होता था। सुरेश उसे हर तरह से समझाने की कोशिश करता, कहता, "किस्मत पर किसी का क्या वश! माँ को इसी तरह जाना था, चली गई। अब तुम अपनी ओर से इस तरह लापरवाह हो जाओगी तो कैसे काम चलेगा।"

"मन को बहुत समझाती हूँ" सुधा कहती, "उम्मीद करती हूँ समझा लूँगी, पर रह-रह कर मन बेकाबू हो जाता है ।"

सुधा का वैराग्य सुरेश को बहुत कठिन पड़ रहा था; पर सुधा की मानसिक स्थिति का खयाल कर वह द्रवित हो जाता था ।

उस दिन दूकान से लौटने पर सुधा के हाथ में एक बंडल दे सुरेश बोला, "देखो तो सुधा, यह साड़ी कैसी है ?"

वही सुधा जो पहले ऐसे अवसरों पर आह्लाद से भर उठती थी बोली, "अच्छी है ।"

"अच्छी है तो जरा पहन कर देखो तो कैसी लगती है ।"

"ऊँह, रहने भी दो । जल्दी क्या है ?"

सुधा के दोनों हाथों को कस कर पकड़ विनय भरी दृष्टि से उसकी ओर देखता हुआ बहुत अजीजी से सुरेश बोला, "मेरी खातिर कुछ देर के लिये पहन लो ।"

सुधा ने तेजी से उसका हाथ झटक दिया और फिर अपने व्यवहार से खुद शर्मिन्दा हो बोली, "अभी रहने दो ।"

सुरेश ने अपने दोनों मजबूत और भारी हाथ सुधा के दोनों कंधों पर रख दिया और फिर उसकी आँखों में आँखें डाल बोला, "मैं नहीं मानूँगा ।"

सुधा भीता हरिणी की तरह करुण दृष्टि से उसकी ओर देखती हुई बोली, "जिद न करो ।"

अचानक ही सुरेश ने सुधा को अपने आलिंगनपाश में कस लिया और बोला, "मैं जरूर जिद करूँगा । तुम क्यों ऐसी हो गई हो । माँ-बाप किसके नहीं मरते ? इससे कोई वैरागी थोड़े ही हो जाता है ।"

सुधा का चेहरा बिल्कुल पीला पड़ गया और सुरेश की बाँहों में कसी बाणबिद्ध पंछी की तरह छटपटाती बोली, "मुझे छोड़ दो ।"

सुरेश ने अपने आलिंगनपाश को और दृढ़ कर लिया और उसके ओठों पर अपने ओठ रखने की चेष्टा करता हुआ बोला, "नहीं।"

शिकारी की गोली लगने से शेर जिस तरह चिंघाड़ उठता है सुधा वैसी ही चीख पड़ी। विस्मय-चकित सुरेश की बाँहों से छूट वह हाँफती बिलखती बिस्तर पर बैठ गई और अपने दोनों हाथों से अपना मुँह छिपा बिलख-बिलख कर रोने लगी।

सुरेश पर मानो बिजली गिर पड़ी। कुछ देर भौंचक-सा खड़ा उसकी ओर देखता रहा फिर उसके बगल में बैठ उसकी पीठ पर हाथ रख बोला, "तुम्हें क्या हो गया है सुधा" ?

सुरेश के स्पर्श से सुधा चिहुँक उठी और चेहरे पर से बिना हाथ हटाये बोली, "आप मुझे मत छुइये।"

"क्यों," सुरेश चकित बोला, "क्या तुम्हें मुझ से नफरत हो गई है?"

"नहीं।"

"तब ?"

"मैं सुधा नहीं हूँ।"

"पगली" सुरेश डर रहा था कहीं सुधा का दिमाग तो नहीं खराब हो गया है, "क्या मैं अपनी सुधा को नहीं पहचानता ?"

"मैं सच कहती हूँ" सुधा दृढ़ स्वर में बोली, "मैं लता हूँ।"

सुधा के कंधे पर फिर हाथ रख सुरेश बोला, यह किस लता का भूत तुम पर सवार हो गया है सुधा ?"

तड़प कर सुरेश की पकड़ से बाहर होती हुई सुधा बोली, "मैं बतलाती हूँ। सुधा की सूरत ठीक मुझ जैसी थी, मरना मुझ अभागिन को चाहिये था। मैं अपनी माँ के साथ गया से कुम्भ आई थी, सुहागरात के बाद मेरे पति की लाश निकली थी। मेरे घूँघट को उठा वह बोले थे, "तुम कितनी अच्छी हो। विश्वास नहीं होता कि मैं इतना भाग्य-

वान हूँ और जीवनभर के लिये तुम मेरी हो गई हो।" वह बिस्तर पर बैठ ही रहे थे कि नीचे बैठे एक साँप ने उन्हें डँस लिया। सुबह होते-होते उनका शरीर निर्जीव हो गया। प्रयाग में उस रात सुधा और उसकी माँ दम घुट जाने से मर गई। मेरी माँ ने कहा कि तू सुधा के बदले उसके पति के घर चली जा। मैंने इनकार कर दिया। माँ ने समझाया कि पाप तभी होता है जब दुनिया जान समझ जाती है और बदनामी होती है। इस भेद को हम दो के सिवा कौन जानेगा। तुझे भी जीवन का सहारा मिल जायगा और सुधा का पति भी स्त्री-शोक से बच जायगा। माँ ने मुझे कुछ कहने का मौका नहीं दिया और मुझे मजबूर कर दिया।"

दुःख और शोक से जर्जर शरीर से कंपित और क्षीण स्वर से रुक-रुक कर सँभल-सँभल कर निकला हुआ प्रत्येक शब्द मानो सुरेश की छाती पर वज्र प्रहार कर रहा था। उसकी आँखें मानो पहाड़ की दो चट्टान थीं जिसे ठेल कर निकलने के लिये दो सोता उतावला हो रहा है।

"तुम सुधा नहीं हो? सुधा अब नहीं है?" सुरेश बदबुदाया, फिर तेज स्वर में बोला, "यह सब तुमने मुझे क्यों बतलाया? तुमने मेरा सुख चैन छीन लिया। मेरा जीवन नरक बना दिया। बोल नासमझ औरत, यह सब कहने के लिये तुम्हें कोई मजबूर कर रहा था?"

"हाँ"

"कौन?"

"मेरा संस्कार। कुछ घंटों के लिये जिस पति से मिली उसे हिन्दू स्त्री का मेरा हृदय कभी भूल नहीं सका। जिस शरीर पर सिर्फ उनका अधिकार था उसे कोई दूसरा छूये भी यह मैं बरदाश्त नहीं कर सकती।"

"ऐसा संस्कार था तो क्या जरूरत थी मेरे साथ आने की ? तुम्हारे संस्कार ने मेरा और तुम्हारा दोनो का जीवन चौपट कर दिया ।"

"मैं मजबूर कर दी गयी थी बीमारी की हालत में । मैं आज ही चली जाऊँगी ।"

सुरेश उठ खड़ा हुआ । कुछ क्षण लता की ओर देखता रहा, फिर बोला, "तुम कहीं मत जाओ । तुम्हारे संस्कार की दुर्दशा मैं नहीं होने देना चाहता । मैं वादा करता हूँ, मैं कभी तुम्हारा स्पर्श नहीं करूँगा । मैं तुम्हें अपनी सुधा की जीतीजागती तसवीर समझूँगा । लता ने बाँध तोड़ दिया था और सुरेश की आँखों से आँसू की दो धाराएँ बह रही थी ।

खून की प्यास

तब तक भारतीय सभ्यता का बहुत कुछ ह्रास हो चुका था, कुप्रवृत्तियों और दुर्गुणों की वृद्धि ही हो रही थी, फिर भी आज की अपेक्षा उस वक्त हम अच्छे ही थे। आज तो हम इतना नीचे गिर गये हैं और इतने पतित हो गये हैं कि हमारे लिए एक ही उपाय बच रहा है, वह है नये सिरे से समाज के पुनर्निर्माण का। पर उस जमाने में भी कोई ऐसी बात न थी जिस पर हम गर्व कर सकें। सद्भाव और उदारता जिन दो बातों को अपनाकर कोई राष्ट्र उन्नति कर सकता है, हम में तिल भर को भी नहीं था। बात-बात में किरिचें बज उठती थीं। बनावटी कुल की लज्जा और झूठ-मूठ के अपमान का बदला लेने के नाम पर अपने पड़ोसियों और कुटम्बियों तक का खून बहाना सबसे बड़ी वीरता का काम समझा जाता था। राजपूताने के रेगिस्तान में क्षत्रिय एक दूसरे की गर्दन रेत जूझ मरते थे और लोग समझते थे कि उनका नाम इतिहास के पन्नों में अमर हो रहा है, पर वास्तव में देश को रसातल की ओर जाने का मार्ग वे सुगम बना रहे थे। ईश्वर ने उन्हें बल दिया था, उन्हें वीर बनाया था, पर देश को उनकी वीरता से जितना लाभ न हुआ उससे ज्यादा नुकसान हुआ। हमारी अयोग्यता का इससे बढ़कर प्रमाण क्या हो सकता है कि राणा प्रताप और शिवाजी जैसे नेताओं को पाकर भी हम कुछ न कर सके, जब कि दूसरे देशों में

एक वाशिङ्गटन, लेनिन, हिटलर या मुसोलिनी देश का कायाकल्प कर देते हैं ।

टाड के उसी राजस्थान के "वीरों" का एक दल अकबर द्वारा भेजा जाकर बिहार के विद्रोही सरकार को खदेड़ विजय दुन्दुभी बजाता लौट रहा था । जिस वक्त गरीब हिन्दुस्तानियों के सिर कट कर गिर रहे थे, गर्दन से खून की फुलझड़ी छूटती थी, लोथ जमीन पर गिरकर छटपटाते थे, और घायल सिपाहियों के मुँह से दर्दनाक आवाजें निकलती थीं, उन वीर राजपूतों की आँखें खुशी से चमक उठती थीं, मुगल सरदारों की शाबाशी पा वे फूलकर कुप्पा हो जाते थे ।

उस दिन गङ्गा के किनारे एक सुरम्य स्थान पर फौज ने डेरा डाला था । दिन जब ढलना शुरू हुआ तो बलवीर सिंह सज-धज कर खेमे से निकलने लगा ।

"कहाँ चले बलवीर ?" ठाकुर सिंह ने टोका ।

"यों ही, जरा घूम आऊँ, तुम भी चलते हो ?"

"नहीं भाई, चलता तो जरूर, पर बहुत थका-सा मालूम होता हूँ ।"

"तुम भी खूब हो दोस्त ! बहुत जल्दी थक जाते हो ।"

"बहुत जबर्दस्त लड़ाई लड़नी पड़ी थी बलवीर ! तुम्हें मानना ही पड़ेगा ।"

"हूँ ! ऐसी बहुत लड़ाइयाँ देखी हैं । मुझे तो सन्तोष ही न हुआ । मन करता था, कुछ और लोथें गिराऊँ, बर्छे की नोक पर सिर उठा जमीन पर दे मारूँ, तलवार से देह के साफ दो-दो टुकड़े कर दूँ ।"

"तुम बहादुर हो बलवीर, पर युद्ध में मुझे बड़ा सदमा पहुँचा ।"

बलवीर उपेक्षा से हँसा—"क्या ?"

"वही जगत की.......।"

"ओह ! तुम्हारा दिल भी बड़ा नाजुक है। लड़ाई में कितने आदमी मरते हैं। इस तरह अफसोस किया करोगे तब तो जिन्दगी भर अफसोस ही करते रहना पड़ेगा।"

"जगत की बात कुछ और थी।"

"सो तो ठीक है।"—और कुछ ठहर कर बोला—"चलो घूम आयें, तबियत बहल जायगी।"

"बार-बार यही याद आता है बलबीर, हम तीनों हमेशा एक साथ निकलते थे।"

"भूल जाओ ठाकुर, तीन नहीं दो ही सही। चलो चलें।"

"अभी तुरन्त तो नहीं चल सकता बलबीर। तुम बढ़ो, मैं पीछे से आता हूँ। हाँ, बता दो, तुम किस ओर जाओगे।"

"सामने जो छोटा-मोटा जंगल-सा दीख पड़ता है, उसी ओर जाऊँगा। जल्दी आना।"—और वह उछल कर घोड़े पर चढ़ा और हवा हो गया।

बलबीर बहादुरी के लिए अपने दल में मशहूर था। उसके साथी कहा करते थे कि उसका हृदय वज्र के समान कठोर है। सरदार का कहना था कि बलबीर सिंह ने फौलाद की छाती पाई है।

(२)

बलबीर सिंह पगडंडी पकड़े बहुत दूर तक चला गया। जब कभी गंगा का तट दिखाई पड़ने लगता था, बलबीर छाती फुलाये, गर्व से चूर बढ़ा जा रहा था। सहसा एक हिरन पर उसकी दृष्टि पड़ी। हिरन शायद चौकस रहने की आदत भूल गया था, क्योंकि घोड़े की टाप की ध्वनि के बावजूद भी वह ज्यों का त्यों बिना किसी आशंका के चर रहा था। पर उस पशु को देख बलबीर की आँखें चमक उठीं। एक मशीन की तरह उसका हाथ बर्छे की ओर गया। बर्छे को तान कर उसने लक्ष्य

किया और फेंका। एक हृदय-विदारक ध्वनि से वातावरण गूँज उठा और दूसरे ही क्षण रक्त से लथपथ हिरन जमीन पर लोट रहा था।

बलवीर घोड़े ही पर उछल पड़ा। वह घोड़े से उतर उस स्थान की ओर बढ़ा, पर उसके पहुँचने के पहले ही बिजली के समान एक बालिका वहाँ पहुँच गई। भीता हरिणी-सी उसकी आँखें चारों ओर कुछ खोज रही थी। सहसा उसकी दृष्टि खून से सने हिरन पर पड़ी। वह चीख उठी और हिरन से लिपट गई। वह सुबकियाँ भर रही थी।

बलवीर विस्मित रह गया था। उसने पूछा—"तुम कौन हो?"

बालिका ने दृष्टि ऊपर उठाई। उसका चेहरा आसुओं से भीग गया था, उसकी आँखें जैसे पानी में तैर रही थीं। उसके चेहरे पर करुणा मूर्तिमान होकर नाच रही थी। बलवीर की ओर देख वह बोली—"इसे तुमने मारा? ओह! तुमने ऐसा क्यों किया?"

"तुम कौन हो?"—उसने फिर पूछा।

बालिका दुःख से कातर हो रही थी। सुबकती हुई बोली—"ओह, हीरा को मैंने क्यों अकेला छोड़ा? उसका अब क्या होगा?"

बालिका की दशा देख बलवीर कुछ पिघला, पर कठोरता का आवरण बिना हटाये वह बोला—"यह तेरा पालतू हिरन था, ऐ लड़की। हट, उठ, ऐसे बहुत हिरन मिलेंगे।"—और उसने बालिका का हाथ पकड़ कर उठाना चाहा। उसने झटके मे अपना हाथ छुड़ा लिया—"मेरा हीरा अब कहाँ से आयेगा?"—वह बिलख रही थी—"उसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था?"

बालिका की आन्तरिक वेदना का प्रभाव बलवीर पर पड़ रहा था। वह बोला—"सुनो, मै तुम्हे दूसरा हिरन ला दूँगा। उसका अब क्या हो सकता है? हटो, बर्छी निकाल लूँ।"

बालिका विसूर रही थी। उसके हाथ-पाँव खून से सन गये थे। सामने नन्हा-सा जीव दम तोड़ रहा था। बलवीर के लिए यह नया दृश्य था। जब अपनी तैरती हुई आँखो वाला सलोना मुख, जो वेदना से विकृत हो गया था, उस भोली ग्रामीण बाला ने ऊपर उठाया तो बलवीर उसकी ओर देख न सका। जब उसने बर्छा निकाला तब एक दफा तेजी से कराह कर हिरन ने दम तोड़ दिया। बालिका इस तरह चीखी जैसे किसी ने उसके बगल में कटार घुसा दी हो।

बलवीर आज पहले पहल एक खून कर पछता रहा था। उसने उस लड़की को विश्वास दिलाया कि दूसरे दिन तड़के ही आकर जंगल मे एक हिरन पकड़ कर ले आयेगा और उसे दे देगा। उसने अफसोस किया कि अनजाने उसने उसके पालतू हिरन को मारा। मृत हिरन को वह नदी किनारे ले आया और बालिका के सहयोग से लकड़ियाँ इकट्ठा कर उसे जला दिया। लड़की की आँखों से लगातार आँसू निकल रहे थे।

(३)

बलवीर उदास मन से वापस लौट रहा था। उसका सारा उत्साह काफूर की तरह उड़ गया। उसे बार-बार तैरती हुई आँखों वाली लड़की का सलोना मुख याद आता था और उसका कठोर हृदय आर्द्र हो उठता था।

सूर्य डूबने-डूबने हो रहा था। घोड़े पर बलवीर धीरे-धीरे जा रहा था। सहसा उसे किसी ने पुकारा। घूमकर देखता है तो ठाकुर।

"इतनी देर से तुम्हें ढूँढ़ रहा हूँ बलवीर, तुम कहाँ थे ?"

बलवीर चुपचाप घोड़े से उतर पड़ा। बोला—"चलो, जरा नदी किनारे कुछ देर बैठें।"

दोनो जब वहाँ बैठ गये तो ठाकुर बोला—"तुम ठीक कहते थे बलवीर, हमे कभी विचलित न होना चाहिए।"

"हाँ ।"—बलवीर ने कहा ।

ठाकुर ने बलवीर के चेहरे पर एक छाया लक्ष्य किया । बलवीर उदास था । ठाकुर को अचरज हुआ । अभी तो हँसता-गाता, उत्साहभरी बातें करता वह खेमे से निकला था । बोला—"क्या बात है बलवीर ?

"क्यों, कुछ तो नहीं ?"

"तुम बहुत सुस्त हो !"

अब बलवीर न सँभल सका—"ठाकुर, जगत ।"—और वह स्त्री की तरह बिलख-बिलख कर रोने लगा ।

"धुत् पागल कहीं के ।"—ठाकुर बोला—"आज तुम्हें हो क्या गया है । जब फौलाद की छाती रखने वाले बहादुर की यह हालत है, तो औरों का क्या ठिकाना ।"

बलवीर घुटनों में सिर डाले रो रहा था ।

"सुनते हो बलवीर, खुशखबरी है । बागी सेना फिर उठ खड़ी हुई है । कल सुबह ही पूरब की ओर कूच करना है ।"

बलवीर इस तरह चिहुका कि ठाकुर अचरज से भर गया—"सच ! मैं न जा सकूँगा ठाकुर ।"

"क्या कहते हो ?"—ठाकुर विस्मयचकित हो गया था ।

"ठीक कहता हूँ ।"

"देखते-देखते तुम्हें क्या हो गया बलवीर ? तुम्हारी फौलाद की छाती में क्या हुआ ?"

"जङ्ग लग गया, मैंने उसे फेंक दिया ! अब मेरी छाती मोम-सी हो गई है । ओह, मैं कैसे किसी का खून करूँगा ?"

(४)

दूसरे दिन जब सेना कूच कर रही थी, बलवीर जङ्गल में हिरनों के पीछे दौड़ रहा था । उनका खून करने नहीं, उन्हें पकड़ने के लिए ।

एक घटना

अगर किसी के जीवन को घटनाओं से हीन कहा जा सकता है, तो जोगेश के जीवन के विषय में हम यही कहेंगे कि उसका जीवन नियमित था और वह शान्त था। इसलिए उसके जीवन में ऐसी बातें न हुईं, जिन्हें कहानीकारों या फिल्मकारों के अर्थ मे घटना का विशेषण दिया जा सके। उसका अपना कार्यक्रम था, उस कार्यक्रम के प्रति उसे मोह था और वह प्रतिदिन, दिनभर अपने कार्यक्रम की पूर्ति में ही व्यस्त रहता। पढ़ना, लिखना और कसरत करना—ये ही उसके कार्यक्रम के मुख्य अंग थे। ऐसा नियम बना और ऐसा स्वभाव था, वह अब तक घटनाओं का निर्माण करने में असमर्थ रहा, इसमें अचरज की बात नहीं है। यों इतिहास का निर्माण करना अलग बात है; पर घटनाओं का निर्माण तो वे ही करते हैं, जिनके पास समय ज्यादा है और काम कम, और जिनका स्वभाव ऐसा है कि खाली समय में चुपचाप बैठे रह कर कुछ विचार करने के बजाय उन्हें उपद्रव करने में ही ज्यादा मजा आता है।

पर ऐसे शान्त और सच्चरित्र युवक के जीवन में भी कभी-कभी असाधारणता आ जाती है और ऐसी परिस्थितियों में ऐसे युवक जब भावनाओं में बह जाते हैं, तब उनका सभी आदर्श और सभी नियम क्षण भर में बालू के महल की तरह ढह कर नष्ट हो जाते हैं। जोगेश

का सारा जीवन शायद साधारण अर्थों में घटनाहीन बीत जाता। ऐसा होता तो शायद उसके बारे में हमें कुछ कहने की जरूरत न होती। किसी कहानी का नायक जोगेश बने, इसके लिये जरूरी है कि उसके भावों में नवीनता हो, या उसके जीवन की घटनाओं में असाधारणता हो। यों दुनिया में बहुत आदमी हैं और प्रत्येक के विषय में प्रत्येक का जानना, न संभव है, न लाभदायक।

जोगेश के जीवन को घटनाहीन कहने का साहस जब हमने किया था, तो इस बात का खयाल नही रखा था कि जोगेश के जीवन का पहला पहर भी अभी नहीं बीता था। माता-पिता की आँखों में अभी तक वह नादान बालक था और दुनिया की नजरों में भी कालेज के अल्हड़, अधकचरे और अनुभवहीन, आतुर युवकों के दल का ही एक सदस्य वह था। उसमें गाम्भीर्य था, पर वह गाम्भीर्य उसे बुजुर्गों की पँक्ति में न बैठा पाती, क्योंकि अभी तक वह अविवाहित था। उसकी शिक्षा अभी पूरी न हुई थी। और अभी वह कमानेवाला न हुआ था। समाज का उत्तरदायी सदस्य बनने के लिये उपयुक्त तीन बातों में से किसी दो का रहना जरूरी है।

समय सदा अनिश्चित रहता है, यह जानते हुए भी जोगेश के सारे जीवन को घटनाहीन करार दे देना, गलत ही था। समय ने इसे सिद्ध कर दिया। कुछ ऐसा हुआ कि नियम और कार्यक्रम से अत्यधिक मोह रखने वाले जोगेश का शान्त दिल एकाएक बहुत चंचल हो गया। मनुष्य जब चंचल हो जाता है, तो भले बुरे का भेद भूल जाता है। वह भावनाओं में बह जाता है। चंचलतावाश भूले हुए मनुष्य के सामने एक ही रास्ता है—वह है पतन का रास्ता। यह रास्ता बहुत कष्टदायक और ऊबर-खाबड़ है। पाँव फिसलने का सदा डर रहता है और मनुष्य जब गिरता है, तो ज्यादातर बहुत गहराई में पहुँच जाता है।

एक घटना

मनुष्य जितनी ऊँचाई से गिरता है, उतनी ही अधिक चोट लगती है ।

जोगेश बहुत ऊँची सतह पर रहने वाला आदमी था । उसका लक्ष्य ऊँचा था, उसके भाव उन्नत थे और उसका आदर्श महान् था । वही जोगेश पतन के गढ़े की ओर तेजी से बढ़ने लगा था । वह उसके छोर तक पहुँच गया था और अब गिरने, तब गिरने पर था । वह गिर जाता, पर वह बच गया । उसे बचा दिया गया । उसे बचाने-वाली एक ऐसी लड़की थी, जो पहले ही से उस खाई में गिरी थी—जोगेश ने हाथ बढ़ाया—"मुझे भी वहीं आने दो, मेरी यही मंशा है । मुझे भीतर खींच लो ।"

वह कुछ देर सोचती रही । उसके चेहरे पर कुटिल मुस्कुराहट की रेखा दौड़ गई, ऐसी रेखा जो ज्यादातर पतित स्त्रियों के चेहरे पर दिखाई पड़ती है । पर सहसा वह संयत हो गई । वह औरत जो आज तक सदा असंयत रही थी, सहसा संयत हो गई—"तुम चले जाओ, तुम्हारी यहाँ जरूरत नहीं ।"

जोगेश लौट गया, उदास होकर । वह कुछ समय तक अनमना रहा । उसे कुछ रीता-रीता लगता और उसके चारों ओर उदासी छायी रहती । पर वह सँभल गया था । उस खाई की ओर वह फिर न गया । उसका फिर ऊँचा लक्ष्य था, उन्नत भाव थे और महान् आदर्श था । जोगेश अपने पहले रास्ते पर बढ़ रहा था । जीवन की एक घटना ने नियम और कार्यक्रम के प्रति उसका मोह और भी बढ़ा दिया था । उस एक घटना के कारण शायद अब उसका भावी जीवन ऐसा हो जाय, जिसे हम घटनाहीन कह सकें । इससे उस घटना का महत्व और बढ़ जाता है, क्योंकि उसके कारण वह अपने जीवन को घटनाहीन बना, उसे महत्वहीन बनाने से बचा देगा । आज कल घटना का अर्थ है रोमांस और रोमांस आदमी को बेकाम बना देता है ।

यह एक नशे की तरह है। इसकी लत बुरी है, क्योंकि यह जल्दी छूटती नहीं है।

मनुष्य सौंदर्य का प्रेमी है। नवीनता में सौंदर्य रहता है। हजार बुराइयों और तरद्दुदों के बावजूद लोगों में दुनिया के लिए आकर्षण है। इसकी वजह है कि दुनिया बहुत बड़ी है और आदमी बहुत छोटा है। अगर सभी काम छोड़ मनुष्य सिर्फ दुनिया को देखना शुरू करे तो सारी जिन्दगी बीत जायगी, पर वह पूरी दुनिया न देख सकेगा। उसे नई-नई चीजें देखने को मिलेंगी। एक ही चीज के निकट हम बहुत समय तक रहेंगे, तो उस चीज से हमें घृणा हो जायगी। इसके विपरीत नई चीजों को देख मनुष्य में प्रेम उत्पन्न होता है।

उत्तर बिहार की एक उपेक्षित उजाड़ जगह—वहाँ के रहने वालों को भी वह जगह अच्छी नहीं लगती। पर जोगेश जब दो महीने की छुट्टियाँ बिताने वहाँ गया तो उसे वह बहुत भली लगी। शहर से हट कर खुली जगह पर उसका मकान था। उसके बायें तरफ एक बड़ा-सा सुन्दर मकान था, जो बहुत दिनों से खाली था। दाहिनी ओर वाले मकान में एक भद्र परिवार रहता था।

जोगेश को इस साल बी० ए० की परीक्षा देनी थी। परीक्षा मार्च से शुरु होने को थी। दोस्तों ने कहा कि पटने में ही रह कर परीक्षा की तैयारी करनी ठीक होगी, पर जोगेश न माना। वह अपने मन की ही करता है। उसने अपने चाचा के यहाँ जाने का निश्चय किया उसने सोचा, वह जगह नई है, तंग करने को संगी-साथी नहीं हैं। छोटा शहर है, मजे में पढ़ा जायगा। जब परीक्षा निकट आ जाती है, तो पढने की ओर जोगेश की रुचि एकाएक बहुत बढ जाती है। यों उसे एक बात का बहुत शौक है। अपने स्वास्थ्य के विषय में वह बहुत सचेष्ट रहता है और व्यायाम आदि के बल पर उसने अपने स्वास्थ्य को

दर्शनीय बना लिया है। वह मेधावी है और दो तीन महीने परिश्रम कर अच्छी तरह परीक्षाएं पास कर लेने की क्षमता रखता है। इस दफा वह नित्य बारह घंटे पढ़ने का प्रोग्राम बना कर आया था।

जो दोस्त उसे जहाज घाट पहुँचाने आया था, वह बहुत स्पष्ट-वादी था। उसने कहा था—"जोगेश, तुम अहमक हो। मेरा तो मन करता है कि तुम्हें बेवकूफ ही कह दूँ। इतना शौक था तुम्हें वहां जाने का, तो इम्तहान के बाद जाते, लम्बी छुट्टी मिलती। यह सेन्टर है। किताबें मिलेंगी, सवालों का पता लगेगा कितनी सुविधायें हैं यहाँ। देखो, कटक, पुरी और हजारीबाग तक से विद्यार्थी यहीं आ रहे हैं।"

जोगेश ने हँस कर उसकी बात टाल दी—"यहाँ रुक नहीं सकता, तुम हजार लालच दो। मुझे कोई चीज वहां खींचे लिये जा रही है।"

"तुम्हारी बदकिस्मती खींचे लिये जा रही है। पास तो हो ही जाओगे पर 'आनर्स' तो नहीं मिलेगा।"

यह बात जोगेश को लग गई। कहा तो उसने सिर्फ इतना ही—"खैर, यह तो रिजल्ट ही बतायगा।" पर रास्ते भर उसका मन उचटा रहा। उसने पढ़ने के न जाने कितने प्रोग्राम बनाये और कोई प्रोग्राम नित्य दस घंटे से कम का न था।

(२)

वहाँ पहुँचते ही अपने चाचा और चाची पर उसने अपना इरादा जाहिर कर दिया। पहले तो उसने उस काम की महत्ता का बखान किया, जो उसे करना था—"बी० ए० का इम्तहान देना मामूली बात नहीं है। बहुत मेहनत करनी पड़ती है, दुनिया भर की किताबें हैं और सब एक से एक मोटी और सख्त। दो साल मौज किया, उसकी कसर इस दो महीने में निकालनी है।"

चाचा अपने समय में बहुत अच्छे विद्यार्थी थे । परीक्षा-फल के कारण ही उन्हें इतनी अच्छी सरकारी नौकरी बिना किसी सिफारिश के मिल गयी थी । वह पढ़ने के मसले पर राय देने का लोभ संवरण न कर सके—"यही तो बुरी बात है तुम लोगों में । अब दो महीने रात-रात भर पढोगे । इससे कही अच्छा होता, अगर दोनो साल थोड़ा थोड़ा पढ़ते रहते !"

"सो तो ठीक है, पर जब तक परीक्षा नजदीक नहीं आती, पढ़ने में मन ही नही लगता ।"

खैर, बात तय हो गई । जोगेश को एक तरफ एक एकान्त कमरा मिल गया और बच्चों को ताकीद कर दी गई कि भैया को तंग न करें, उसे बहुत बड़ा इम्तहान देना है । जोगेश अपने कमरे में गया और किताबें आलमारी पर रख दी । अपने सामान को तरतीब मे रख दिया और तब सोचा, पढ़ाई आज से शुरु हो, या कल से ? वह कुछ देर सोचता रहा । यों खाली सोचना जोगेश को अच्छा नही लगता । ऐसे तो उसमें कोई लत नहीं है, पर अनजाने ही उसे सिगरेट पीने की आदत पड़ गई है । जब उसे किसी मसले पर गौर करना होता है, तो वह कुरसी पर या टेबिल पर बैठ जाता है और सिगरेट का कश खीचता है और सोचता है । सो इस वक्त भी उसने ऐसा ही किया । धुएँ का अम्बार कमरे मे छाने लगा और हवा की कमी से परेशान हो उसने खिड़की खोल दी; नजर एक युवती पर पड़ी । बगल के मकान के कमरे की खिड़की इस ओर खुलती थी और वह लड़की मानो अभी-अभी सज-धज कर खिड़की के नजदीक आ खड़ी हुई थी । जोगेश को देख, वह लड़की कुछ झिझकी; पर हटी नहीं । एक नजर जोगेश की ओर देखा और फिर दृष्टि फेर ली ।

'यह क्या बला है ?' जोगेश मन ही मन बड़बड़ाया । 'क्या आफत है ? खूब पढ़ाई होगी तब तो ?' वह खिड़की से हट गया और खाट पर बैठ सिगरेट का कश लेने लगा। उसने चोरी की दृष्टि से खिड़की की ओर देखा, लड़की अभी तक खड़ी थी । जोगेश अपनी किताबों की ओर देखने लगा कि पहले इतिहास शुरु करेगा या एकनामिक्स । अभी वह निश्चय ही कर रहा था कि बगल की आवाज से चौक कर वह खिड़की की ओर देखने लगा । लड़की किसी को डाँट रही थी—"अरे दीवू, देख तो, इस तरह कूदेगा तो हड्डी-पसली सब टूट जायगी ! भाग वहाँ से ।"

जोगेश खिड़की तक गया और बच्चों की हरकतों को देखने लगा । उसने नजर फिरा कर उस लड़की को ध्यान से देखा । उन्नीस-बीस की उम्र होगी, चेहरे से चंचलता टपकती थी, रंग साधारण था; पर बालों और भौंहों में कुछ ऐसा घनापन था, जो उसके चेहरे को सलोना-बना देता था । शरीर स्वस्थ था, इसीसे चेहरे पर चमक थी । उसकी माँग के सिन्दूर को देख कर जोगेश मन ही मन बोला, 'शादी हो गई है । तभी इतनी ढीठ है । शादी के बाद स्त्री और पुरुष की एक दूसरे के प्रति जो उत्सुकता रहती है, वह शांत हो जाती है । मेरी भी अगर शादी हो गई होती, तो इसे यहाँ इस तरह खड़ी देख, मेरे दिल में भी कोई विशेष भाव पैदा न होता । खैर, अब भी क्या हो रहा है ?' और उसने फिर किताबों की ओर दृष्टि फेरी । पर उधर देखने की उसे इच्छा न हुई । इच्छा हो रही थी खूब सोचने की । उसने घड़ी देखी । एक बज रहा था । उसने अपने को समझाया, 'इतना थके-माँदे आये हो, आज आराम करो, और वह एक चादर तान बिस्तर पर लेट गया ।

पर लेट कर वह तुरन्त सोया नहीं । वह सोचने लगा । वह चाहता था कि इधर-उधर की बातें सोचे, कालेज की बातें सोचे,

पढ़ने की बातें सोचे; पर घूम-फिर कर उसका दिमाग उस लड़की की ओर पहुँच जाता। कौन होगी वह ? क्या नाम होगा उसका ? अच्छी-भली लगती है। ऊँह, हरेक जवान लड़की भली लगती है। पर नहीं, ऐसा कहना ठीक नहीं है। पटने में एक बदसूरत जवान लड़की को देख कर उसी ने रिमार्क किया था कि अगर दो महीने तक लगातार उसे सिर्फ ऐसी ही अनेक लड़कियाँ दिखाई पड़ती जायँ, तो उसे लड़कियों से घृणा हो जायगी। पर बहुत सी लड़कियाँ ऐसी रहती हैं, जिन्हें देख प्यार करने को मन करता है। पर इसका मतलब यह नहीं कि मुझे इस लड़की से प्रेम करने को मन कर रहा है। छिः छिः ! ऐसा कैसे हो सकता है ? एक शादीशुदा औरत के प्रति ऐसा भाव। मेरी भी कभी शादी होगी और मेरी पत्नी के बारे में कोई ऐसा सोचे, तो मुझे कैसा लगेगा ?

यों सोचते-सोचते जोगेश को सचमुच नींद आ गयी। थका-माँदा तो वह था ही। सोया सो चार बजे नींद टूटी।

सोकर उठने के बाद जोगेश की थकावट बहुत कुछ मिट चुकी थी। वह अपने में ताजगी का अनुभव कर रहा था और उसकी जबरदस्त इच्छा हो रही थी कि कहीं घूम आये। कपड़े पहिन कर वह बाहर निकल ही गया। जगह एकान्त थी और सामने बहुत दूर तक मैदान फैला था। जोगेश को बहुत कौतूहल हुआ, ऐसी शांत जगह में कैसे लोगों का मन लगता होगा ? वह शहर में रहने का आदी था और बड़े शहरों में रहने वालों की को छोटे शहरों का जीवन बहुत शुष्क और नीरस मालूम पड़ता है। जहाँ न बाजार हो, न चहल-पहल हो और न सड़कों पर आदमियों का और स्त्री-बच्चों की रेलपेल हो, वहाँ आदमी क्या देख कर रहेगा ? 'आदत है भाई, आदत है।" जोगेश ने मन ही मन सोचा, फिर जो व्यस्त

रहते हैं, उनके सामने मन लगने का सवाल नहीं उठता । वे अपने काम में ही फँसे रहेंगे । अपनी ही बात लो, पूरा कोर्स खतम करना है और तीन महीने सिर्फ बाकी हैं । सिर उठाने की फुर्सत भी खलेगी मुझे ? या फिर, जैसे उस लड़की को ले लो । उसका पति आता है । गृह कितनी ही उजाड़ हो, उसे क्या ? उसका मन थोड़े ही ऊबता होगा । पट्ठा मौज करता होगा । जोगेश की विचारधारा कहाँ-कहाँ से घूमती-फिरती उसी लड़की पर पहुँच गई, यह सोच उसे खुद ताज्जुब हुआ । उसने अपने आपको धिक्कारा—आखिर उस छोकरी में क्या है बाबा, जो तुम उसके बारे में सोचना नहीं छोड़ते । यह बुरी आदत है । तुम अच्छे लड़के हो । तुम्हारा चरित्र सुन्दर है, तुहारा स्वास्थ्य अच्छा है, इन लड़कियों के बखेड़े में मत पड़ो । पढ़ना तुम्हारा काम है, पढो ।

जोगेश टहल कर लौटा, तो बहुत अनमना हो रहा था । उसने निश्चय कर लिया कि वह सामने की खिड़की को बन्द रखेगा । और कमरे में आकर उसने पहला काम जो किया, वह उस खिड़की को बन्द करना था ।

(३)

जोगेश के पड़ोसी एक वकील थे । उस छोटी-सी सबडिवीजन के चोटी के वकीलों में उनकी गिनती थी और इस नाते उस छोटे शहर मे उनका काफी सम्मान था । पर उनका घरेलू जीवन सुखी नहीं था । उनकी पत्नी थी, जो सदा बीमार रहती थी । जब तक जीती रही, वकील साहब को अपने रोग के कारण तबाह करती रही, और जब मरी, तो तीन रोगी और शरारती लड़के छोड कर गई । उसके शरीर मे तो इतनी ताकत भी नहीं थी कि अपने बच्चों की ठीक देख-भाल भी कर सके । उनकी उम्र क्रमशः बारह, नौ और सात वर्ष

की थी। वे शरीर से रोगी, शरारती और बदतमीज निकले। सुमन वकील साहब की छोटी बहन थी। शुरू से इन्हीं के यहाँ पली थी और अभी दो वर्ष हुए, वकील साहब ने उसकी शादी की थी। वर बी० ए० में पढ़ता था, पर ऐसा संयोग हुआ कि शादी को दो वर्ष हो गये और वह बी० ए० ही में पढ़ रहे हैं। घर की देख-रेख सुमन ही करती थी। उसमें इसका माद्दा था और वकील साहब कभी-कभी सोचते कि अगर सुमन न रहती, तो घर नरक बन जाता। नौकरों चाकरों पर उसका शासन था और बच्चे अगर घर में किसी से डरते थे, तो सुमन से। सुमन पर वकील साहब का बहुत स्नेह था और उसकी निन्दा सुनना वह कभी पसन्द न करते थे।

पर सुमन में बहुत चंचलता थी। किसी बात को गंभीरतापूर्वक सोचने की उसकी आदत नहीं थी। भावनाओं के उद्वेग में वह सब करने को तैयार हो जाती। इसका आगे क्या परिणाम होगा, इसका तनिक भी खयाल उसे न होता। वह तितली की तरह फुदकती फिरती थी और भविष्य की ओर उपेक्षा की दृष्टि से देखती थी। वह सुख और विलास की भूखी थी और अच्छे-अच्छे कपड़े पहन अच्छे-अच्छे भोजन कर अच्छे अच्छे आदमियों के साथ घूमने का उसको बहुत शौक था। सुन्दर और स्वस्थ युवकों को देख कर उसके हृदय में बहुत मधुर भाव उठते थे और उन भावों को रोकने की वह तनिक भी चेष्टा न करती थी। उसका पति न सुन्दर था, न स्वस्थ था। पर उसे इसकी तनिक चिन्ता न थी। कभी इसके कारण वह दुखी या शोकग्रस्त न हुई।

जोगेश जब से पड़ोस में आकर ठहरा है, उसे उससे दिलचस्पी हो गई है। जोगेश के घर वह आती जाती है। जोगेश की चचेरी बहनों से उसकी दोस्ती है। वह जोगेश के बारे में उसकी बहनों के द्वारा बहुत कुछ जान गई है। जोगेश की चचेरी बहन उससे बहुत

सन्तुष्ट रहती और उसकी बहुत प्रशंसा किया करती। जोगेश भाई के स्वभाव की तारीफ होती कि वह कैसे शांत और गंभीर है, गुस्सा करना तो उन्हे आता ही नहीं, न किसी से झगड़ा न बखेडा, न चिन्ता। हमेशा खुश, हमेशा मस्त ! पढ़ने में हमेशा ऊँचे नम्बर लाते हैं, पर क्या मजाल है कि पढ़ाई के चलते तन्दुरुस्ती पर आँच आने दें। कसरत कभी नहीं छोड़ते। तभी तो तन्दुरुस्ती ऐसी बन गयी है। न जाने कितने दिनों से बीमार नही पड़े है। यों सभी जगह स्त्रियाँ पुरुषों से परदा करती है, पर हमारे जोगेश भाई खुद स्त्रियों से परदा करते है। आज तक उन्हें किसी स्त्री के बारे में बात करते न सुना है, न किसी स्त्री को घूरते देखा है। स्त्रियों के सामने उनकी आँखें अपने आप झुक जाती है। सिनेमा से तो उन्हें चिढ़ है।

सुमन इन बातों को सुनती और मन ही मन मुस्कुराती, मानों उसे कोई किसी अबोध बच्चे की बात सुना रहा हो, और वह उसकी नादानी पर हँस रही हो। पर जोगेश के चरित्र की दृढ़ता और उसके स्वस्थ शरीर के सौंदर्य से वह जरूर प्रभावित होती। पहले दिन जोगेश ने जो खिड़की खोली थी और उसे देख झेप कर अलग हो गया था, यह बात उसे याद थी। दूसरे दिन खिड़की को बन्द देख, उसने अपने को अपमानित अनुभव किया और जब खिड़की तीसरे दिन भी बन्द रही, तो उसे वैसे ही दुख हुआ, जैसे उस बच्चे को होता है, जिसे कोई नया खिलौना दिखा कर न दे। पर उसके चेहरे पर कुटिल मुस्कुराहट छा गई। "बच्चू बहुत बनते हैं, इन्हें देखूंगी। बहुतों को देखा है।"

(४)

उस दिन जोगेश का पढ़ने में एकदम मन न लगा। बहुत कोशिश करने पर भी वह चित्त को एकाग्र न कर सका। उसने सोचा, इधर लगातार दो-तीन किताबें खतम की हैं। शायद दिमाग थक गया है।

उसने उस दिन पढ़ना स्थगित कर दिया, पर न जाने उसे क्या झक चढ़ा कि और दिनों से तिगुनी कसरत कर ली। और उसके बाद बाहर चला गया, तो कई मील का चक्कर दे आया। शाम को लौटा तो थकावट से चूर था और उसने नौकर से जरा पैर दबाने के लिये कहा।

भीखू चाचा के यहाँ बहुत दिनों से नौकर था और जोगेश को लड़कपन से देख रहा था। पर जब से चाचा की बदली इस जगह हुई थी, जोगेश पहली दफा यहाँ आया था। भीखू बहुत गप्पी था और जोगेश का कहना था कि भीखू जितनी बातें बोलता है, उनमें आधी झूठ रहती है। फिर भी वह कभी-कभी ऐसी खबरें सुनाता, जो अन्यथा सुनने में नहीं मिलती थी। इसी कारण जोगेश खाली समय में उससे बातें करना पसन्द करता था।

"बहुत मनहूस जगह है यह भीखू, क्यों ?"

"हाँ, सरकार, आपका मन न लगता होगा।"

"नहीं, मन तो मेरा इन किताबों में लगा रहता है। जानते हो, इम्तहान के दो ही महीने बाकी हैं।"

"पढ़ाई भारी है सरकार, खूब मेहनत कीजिये। फिर अफसर हो ही जाइयेगा तो हमको अपने साथ रखियेगा।"

जोगेश हँसा—"अफसर बनना इतना आसान है!" फिर कुछ ठहरकर बोला—"चाचा ने मकान भी ऐसी जगह पर क्या लिया! चारों तरफ सन्नाटा, ले दे कर बगल में यह वकील साहब हैं। पर इनकी चलती है खूब, क्यों भीखू ?"

"करमजरा आदमी है बाबू, वकालत चलने से क्या होगा।"

"सो क्यों ?"

"घर में कोई नहीं, औरत मर गई, लड़के बिलट गये। एक बहन , उसके लच्छन भी अच्छे नहीं।"

"सो क्या ?"

"कोई करम की औरत है बाबू ? चारों तरफ हल्ला है। कौन ही जानता है !"

"पर बात क्या है ?" जोगेश ने उत्सुक हो पूछा।

"बहुत खराब औरत है ।"

"पर आखिर क्या खराबी है, कुछ कहोगे भी ?" जोगेश की त्सुकता इतनी बढ़ गई कि उसकी आवाज में क्रोध आ गया ।

"यही, चालचलन ठीक नहीं है। आज सिनेमा में, तो कल कहीं; भी कोई, कभी कोई ? कितना कहूँ सरकार।"

"झूठा कहीं का, किसने तुमसे कहा ! सिर्फ बातें बनाता है। कील साहब सुनेंगे, तो जान से मार देंगे।" जोगेश गुस्से में बोला।

"अब आपको विश्वास न हो सरकार, तो क्या कहें। अभी दो हीने भी नहीं हुए हैं, दीबू हल्ला करता फिरता था कि फुआ उस डे मकान में हरीश बाबू के साथ..........। तमाचे लगा लगा कर मून ने उसका मुह रोका।"

"हूँ: ! बच्चे हैं किसीने सिखा दिया होगा। पर हरीश कौन ?"

"दीबू का मास्टर, बाबू !"

"पागल है भीखू, उस काले-कलूटे खटाई जैसे आदमी में क्या रखा कि कोई औरत उसकी ओर खिचे ?"

"अरे, औरतो का पता चलना मुश्किल है, बाबू ! मौके पर जो मेल जाता है, वही ठीक है, चाहे कैसा भी हो।"

"क्या गंदी बातें करता है ! जा भाग जा, दिमाग खराब कर देगा तू मेरा ।"

उस रात बहुत देर तक जोगेश को नींद न आई । सुमन का चित्र उसकी आँखों के सामने घूमता रहा । वह पतिता औरत है । उससे घृणा करनी चाहिये । पर ऐसी औरतें उसे कभी नहीं मिलीं । ऐसा संयोग उसके सामने कभी नहीं आया । यह उसका दुर्भाग्य है । नहीं, दुर्भाग्य, क्यों सौभाग्य है । भगवान् ने उसे पतन के रास्ते से दूर रखा है । हे भगवान्, बड़े घरों में भी ऐसी हालत है । उसके पति को मालूम होगा, तो उसके कलेजे पर साँप लोट जायगा । उसके लिये जिन्दगी जहर हो जायगी । कैसी अच्छी लगती है वह; और उसकी ऐसी करतूत ! भगवान् करे भीखू की बात झूठी हो । अगर झूठ न हुई तो काले-कलूटे रोगी-से लगने वाले हरीश की भी किस्मत है । खैर, सोओ मेरे मन ! तुम दूर ही रहो । आग तो आदमी को जला ही देती है, पर आग के नजदीक भी रहने पर उसका ताप सताता है ।

दूसरे दिन जोगेश पढ़ने बैठा, तो उसने खिड़की खोल दी, और कुर्सी खिड़की के नजदीक ला बाहर की तरफ चेहरा कर पढ़ने लगा । उसने अपने मन को समझाया, क्या मनहूस की तरह खिड़की बन्द कर बैठा रहता है। खिड़की खोलने से धूप आती है । ताजगी मालूम होती है, कैसा अच्छा लगता है !

सामने की खिड़की की ओर उसकी नजर कई दफे गई, पर कोई मूर्त्ति नजर न आयी । सहसा दीबू उस खिड़की के नजदीक आ खड़ा हुआ और इस तरह जोगेश की ओर देखने लगा, जैसे वह कोई अजायबघर का जानवर हो ! जोगेश ने उसकी ओर देखा, पर कुछ बोला नहीं । खड़ा खड़ा दीबू ही बोला, "जरा अपनी किताब दीजिये तो ?"

"क्यों भाई ?" ताज्जुब से जोगेश बोला।

"उसमें से तसवीरें फाड़ूँगा।"

जोगेश को ताज्जुब हुआ कि यह बालक, कैसा प्रस्ताव और कितनी आसानी से रख रहा है ! बोला, "नहीं, तसवीर फाड़ने से तो किताब रद्दी हो जाती है, फिर मेरी किताब में तसवीर है भी नहीं।"

"इतनी मोटी किताब में तसवीर जरूर होगी।"

"नहीं है भई ! मेरी किताब है, मैं जानता हूँ।"

"तो दिखाते क्यों नही ?"

सहसा सामने की ओर नजर गई, जोगेश ने देखा, सुमन सामने की खिड़की पर खड़ी है। वह क्षण भर में उठा और दीबू के नज-दीक जा उसे किताब दे कर बोला, "देखो।"

दीबू ने किताब हाथ में ले ली, उलट पुलट कर देखा, और बोला —"इसकी कीमत कितनी है ?"

"बारह रुपये।"

"बारह रुपये की किताब और एक भी तस्वीर नही ! आप ठगा गये।"

"क्या करूँ ? मैं बेवकूफ हूँ ही।"

"अच्छा, तो मैं इसके पन्नों से नाव बनाऊँगा।" और दीबू किताब ले भागने लगा।

सामने की खिड़की से सुमन यह सब देख रही थी। दीबू की हरकत देख उसने डाँटा—"दीबू, क्यों तंग करता है उन्हें ? उन्हें पढना है।"

जोगेश ने उस ओर देखा। सुमन इतना कहते-कहते मुस्कुरा दी। फुआ की मुस्कुराहट देख दीबू की हिम्मत बढ गयी। वह किताब हाथ में लिये उछल उछल कर गाने लगा—

पढ़ोगे लिखोगे होगे खराब,
खेलोगे कूदोगे होगे नवाब।

जोगेश चिढ़ गया, बोला—"भाई, किताब तो दे दो!" पर दीबू शोर करता रहा।

सुमन को हँसी आ गई, पर वह कठोर मुद्रा बना कर बोली—"दीबू किताब दे दे। नहीं मानता! इधर आ। आता है या नहीं?"

और दीबू सहम कर सुमन के पास चला गया। सुमन ने एक हाथ से उसका कान पकड़ा और दूसरे हाथ से किताब छीन ली, फिर कहा—"जा, भाग यहाँ से।"

दीबू जान छोड़ कर भागा।

तब सुमन ने जोगेश की ओर देखा। वह बुत बना खड़ा था। सुमन ने उसकी ओर किताब बढ़ा कर कहा, "लीजिये अपनी किताब।

जोगेश खिड़की के निकट गया और किताब लेने के लिए उसने हाथ बढ़ाया। सुमन किताब देते-देते बोली—"आपको इतना पढ़ना है और बच्चे तंग करते हैं!"

"नही।"

"नहीं क्या? मैं उन्हें डाँट दूंगी। सुना है, आपको बहुत पढ़ना है।" इतना कह सुमन फिर मुस्कुरा दी।

"हाँ, सो तो हई है।"

और किताब ले वह अपने अमरे में चला आया। सुमन भी खिड़की से हट गयी।

जोगेश ने अपने कमरे में आ मन ही मन सोचा, पढ़ने की बात कह कर तो वह इस तरह मुस्कुराती है, जैसे मैं पढ़ता क्या हूँ, बहुत बड़ी बेवकूफी करता हुँ। पढ़ने में बुरा क्या है! अभी मेहनत करूँगा, आगे इसका फल मिलेगा। मैं जरूर पढ़ूंगा। पर सुमन की मुस्कुराहट

उसे बार-बार याद आने लगी। मुझे देख कर वह क्या सोचती होगी? उसने आइने में अपना चेहरा देखा—बुरा तो नहीं लग रहा हूँ इस वक्त। कपड़े भी साफ हैं। बाल भी ठीक हैं। ऊँह, मैं भी अजीब अहमक हूँ। फिजूल बातें दिमाग में ले आता हूँ।

जोगेश फिर किताब लेकर बैठ गया।

(५)

जोगेश कई दिनों तक उद्विग्न रहा। खिड़की फिर बन्द न हुई। जोगेश की नजर सामने कभी-कभी उठ जाती। सुमन कभी-कभी दीख पड़ती और जब जोगेश की नजर उस पर पड़ती, तो वह मुस्कुरा देती और जोगेश समझता कि वह उसका उपहास कर रही है। फिर भी वह चाहता कि वह बार-बार उसको मुस्कुराती हुई देखे और उसका उपहास स। कभी-कभी जब वह किताब पर दृष्टि डाले पढ़ता रहता तब उसे ऐसा लगता कि सुमन अपनी खिड़की पर खड़ी उसकी ओर देख रही है और मुस्कुरा रही है, वह पढ़ना भूल जाता और रोमांच से भर जाता।

इधर कई दिनों से जोगेश ने शाम को टहलना छोड़ दिया था। शाम को भी खिड़की के सामने बैठ सुमन की मुस्कुराहट की प्रतीक्षा करने में ही उसे ज्यादा आनन्द मिलता था। घर के लोग समझते थे कि ज्यों-ज्यों परीक्षा निकट आती जाती है, जोगेश पढ़ाई में ज्यादा व्यस्त होता जाता है।

उस दिन जोगेश ने अपने मित्र को पत्र में लिखा था—"भाई, तुम्हारा कहना सही निकला। यहाँ मुझे मेरा दुर्भाग्य खींच लाया था। यहाँ मैं बिलकुल पढ़ नहीं पाता। मैं अपने को बहुत दृढ़ और संयमी समझता था। पर मैं गलती पर था। मै कितना दुर्बल हूँ, यह मुझे अब मालूम हुआ?"

शाम को वह कपड़े पहन, टहलने के लिये भी तैयार हो गया। निकलते ही उसकी नजर सामने खिड़की पर पड़ी। मुस्कुराती हुई सुमन दीख पड़ी। वह बोली—"पढ़ाई खतम हो गई क्या ?"

"हाँ, टहलने जा रहा हूँ।"

"सो क्यों ?"

"पढ़ने में मन नहीं लगता।"

"वाह, योगिराज का भी ध्यान टूटा !"

जोगेश हँस कर बढ़ गया। योगिराज हूँ ! मुझे योगिराज समझती है। नहीं जानती, मेरे दिल में क्या तूफान उठ रहा है। वह उस घर से, जिसमें सुमन रहती है, बहुत-दूर चला जाना चाहता है। वह टहलते-टहलते दूर निकल गया। पर खयाल तो उसके मन में था। और मन साथ-साथ चल रहा था। जोगेश असहाय था।

जोगेश के हृदय में अन्तर्द्वन्द्व मचता रहा। करीब दो बजा होगा। जोगेश दरवाजा खोले खिड़की के नजदीक बैठा पढ़ रहा था। सहसा सुमन को उसने आते देखा। उसका हृदय धक् कर गया। नये-नये रंगीन वस्त्रों में वह इस वक्त गुलाब जैसी खिल रही थी। उसने निकट आकर कहा—"आज होली के दिन आप मुहर्रम क्यों मना रहे हैं ?"

"क्या ?" जोगेश भौचक हो बोला।

"कम से कम एक रोज तो पढ़ाई बन्द कीजिये। होली मनाइये।"

"होली !"

"हाँ जनाब, आज होली है।"

"हाँ, है तो।"

"तो होली खेलिये।"

"खेलूँ ?" संकोची जोगेश घबरा गया था। यह जवान औरत जिससे इतना कम परिचय है, इस तरह उसके निकट आकर बोल रही है। जोगेश की समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या कहे ?

"और क्या !" सुमन बोली।

"मुझे खेलना नहीं आता।"

सुमन हँसी। उसने मुट्ठी में अबीर भरी और जोगेश के चेहरे पर मल दी। जोगेश का चेहरा लाल हो गया; सिर्फ अबीर की लाली से नहीं, शर्म की लाली से भी। सुमन बोली—"ऐसे होली खेली जाती है।"

जोगेश भौंचक रह गया। "मेरे पास अबीर नहीं है।" उसने कहा।

"यह लीजिये।" सुमन ने उसकी मुट्ठी अबीर से भर दी। जोगेश ने सुमन की ओर देखा, उसने अपना चेहरा आगे कर दिया। जोगेश कुछ हिचका, फिर उसने अबीर सुमन के चेहरे पर मल दी। उसके सारे शरीर में जैसे बिजली-सी दौड़ गई और वह विस्मय-विमुग्ध रह गया।

सुमन कमरे से निकल गई।

(६)

होली खतम हुए एक सप्ताह हो गया। इन सात दिनों में जोगेश एक पंक्ति भी न पढ़ सका। कोशिश कर के भी न पढ़ सका। उसका दिमाग पढ़ने से इनकार कर देता। परीक्षा के अब सिर्फ कुछ सप्ताह रह गये थे, पर जोगेश को जैसे उसकी परवाह नहीं। उसने कसरत करना भी छोड़ दिया था। इससे उसके स्वास्थ्य में कुछ हानि जरूर हुई थी, पर चेहरे पर एक तरह की मृदुलता आ गई थी और वह अधिक सुन्दर मालूम होता था।

इधर जोगेश के दिमाग से सुमन की याद न निकली। कल्पना के संसार में सुमन के साथ घूमना, उसके बारे में सोचना, उसे बहुत भला

लगता। सुमन को देखने के लिये आकुल रहता, सुमन सामने आती, तो सतृष्ण आँखों से उसकी ओर देखता। उसमें वह अनुपम सौंदर्य, विचित्र मादकता पाता। सुमन की आँखों में जैसे नशा भरा था। वह जोगेश को देखती और स्वाभाविक रूप से मुस्कुरा देती। जोगेश मस्त हो जाता।

उस दिन जोगेश की हालत विक्षिप्त की तरह हो गयी थी! वह दोपहर को ही घर से निकल गया। बहुत देर तक इधर उधर भटकता रहा। अन्त में आकाश पर बादल छाते देख वह लौटा! जब घर से सौ गज की दूरी पर होगा, तो उसे कोई स्त्री जाती हुई दीख पड़ी। चाल से, वह सुमन-सी लगी। जोगेश कदम बढ़ाता हुआ उसके निकट पहुँचा। वह सुमन ही थी।

जोगेश ने निकट आकर पुकारा—"कौन सुमन ?"

सुमन चौंक पड़ी। पीछे की ओर मुड़ कर देखा और मुस्कुरा कर बोली—"ओह, आप !"

"कहाँ से आ रही हैं आप ?"

"यों ही जरा टहलने निकल गई थी।"

"ओह, मालूम होता है, आज पानी बरसेगा।"

"हाँ, रंग तो ऐसा ही है। आप की पढ़ाई कैसी चल रही है, जोगेश बाबू ?"

"चल रही है।"

इतनी बातें करने का मौका दोनों को पहली दफा मिला था; पर जोगेश को लग रहा था, जैसे सुमन से उसका पुराना परिचय है। ऐसा होना ही है। बहुत दिनों तक आसपास रहने से ऐसी निकटता का भाव आ ही जाता है। बातचीत भले ही न हो; पर एक दफा बातचीत शुरू हुई, झिझक मिटी, तो फिर नयापन नहीं मालूम होता।

एक घटना

सहसा बूँदें पड़ने लगीं और एकाएक मूसलधार वृष्टि शुरू हुई। ...अपने घर तक न पहुँच सके। बगलवाला बड़ा-सा मकान मिला, दोनों उसके बराण्डे में चले गये।

बाहर बादल गरज रहा था, बिजली चमक रही थी और मूसलधार ...ृष्टि हो रही थी। बादल घना था और इसके कारण अंधकार छा गया था। उस बड़े एकान्त मकान में ऐसी दशा में एक युवक और युवती अकेली खड़ी थी। दोनों के हृदय में भाव उठते थे और गिरते थे।

सहसा जोगेश ने सुमन की ओर भूखी आँखों से देखा और उसका हाथ पकड़ बोला—"कमरे में चली आओ सुमन यहाँ झोंका आता है।"

सुमन कुछ न बोली, चुपचाप कमरे में चली गई। जोगेश ने अपना एक हाथ सुमन की गरदन में डाल लिया और उसे अपने निकट खींच लिया।

सुमन कुछ न बोली। जोगेश ने उसे अपनी छाती से लगा लिया। सुमन चुप रही। तब जोगेश ने अपनी दोनों बाँहों में भर कर उसे छाती से चिपका लिया और उसका मुख चूम लिया। सुमन कुछ न बोली, जैसे वह नशे में डूबी थी। उसकी आँखों से अजीब चमक निकल रही थी। उसका शरीर काँप रहा था, उसके अधर हिल रहे थे, उसकी छाती धक्-धक् कर रही थी और वह मुग्ध थी।

पर सहसा जैसे उस पर बिजली गिरी। वह तड़प उठी, बल-पूर्वक अपने को जोगेश के बंधन से छुड़ा लिया और तिरस्कारपूर्वक बोली—"यह आप क्या करते हैं, जोगेश बाबू?"

जोगेश की हालत पागल जैसी हो रही थी। उसने फिर सुमन को पकड़ना चाहा, पर वह अलग हट गई और बोली, "जोगेश बाबू, होश में आइये। इसका नतीजा ठीक न होगा।"

पर जोगेश जैसे कुछ सुन नहीं रहा था। उसने सुमन को फिर पकड़ लिया और उसे चूमना चाहा। सुमन ने उसके गाल पर कस कर एक तमाचा लगाया, फिर दूसरा, तीसरा, चौथा.......।

जोगेश जैसे आसमान से गिरा हो। उसके हाथ शिथिल पड़ गये और वह सिर पकड़, जमीन पर बैठ गया। बाहर अभी तक पानी बरस रहा था। जोगेश ने आँसू भरी दृष्टि से उधर देखा और दर्द भरे स्वर में बोला—"तुमने मेरी अच्छी दुर्दशा की सुमन!"

जोगेश की यह हालत देख, सुमन की आँखों से जैसे आँसू बरस पड़ना चाह रहे थे। उसने बलपूर्वक आँसुओं को रोका और बोली—"आपने वैसी ही हरकत की थी जोगेश बाबू?"

जोगेश ने आँखें उठा सुमन की ओर देखा—"क्या मैं उस काले कलूटे रोगी हरीश से भी बुरा हूँ?"

सुमन चौंक पड़ी। जोगेश बोला—"मुझे सब मालूम है सुमन, मैं इतना नीच नहीं हूँ। तुम भले घर की बेटी बहू हो, मेरी ऐसी हिम्मत न होती। मेरा दिल मुझे रोकता। पर तुम्हारे पतन की कहानी से ही मुझे ऐसी प्रेरणा मिली।"

"मैं उसके लिए शर्मिन्दा हूँ।" सुमन सर झुका बोली।

"मेरी बात ठीक तो है सुमन?"

"हाँ।"

"तो फिर, तुमने मेरे साथ ऐसा सलूक क्यों किया? क्या एक वेश्या को हक है कि किसी के साथ ऐसा सलूक करे?"

"मैं वेश्या नहीं हूँ।"

"लेकिन तुम्हारा आचरण, तुम्हारा चरित्र तो वैसा ही है।"

"ऐसा न कहो। वेश्या और गिरी रहती है। उठ नहीं सकती। मैं फिर गिरती, पर मैं तुम्हारे कारण बची। मै तुम्हें इतने दिनों से





ास्मान से गिरा हो । उसके हाथ शिथिल पड़ गये
जमीन पर बैठ गया ।

देख रही हूँ । तुम्हारा चरित्रबल, तुम्हारी दृढ़ता, तुम्हारे संयम और तुम्हारी पवित्रता से मैं कितना प्रभावित हुई थी ! जब मैंने देखा कि मेरे कारण एक ऐसे युवक का पतन हो रहा है, तो मैं काँप उठी । इतना बड़ा उत्तरदायित्व मुझ से लेते न बना । मैंने अपने को रोका ।"

जोगेश की आँखें चमक उठीं । जैसे किसीने उसे उसका महत्व बता दिया । गद्‌गद स्वर में बोला—"सच ? यह बात है सुमन ? इस बात को मैं कभी न भूलूँगा । जब-जब मुझे इस बात की याद आयगी अपने चरित्र को सुन्दर रखने का मेरा संकल्प और बढ़ता जायगा ।"

सुमन ने कहा—"मैं तुम्हें देवता समझती थी, जोगेश बाबू ! देवता को मैं कैसे अपवित्र होने देती ।"

जोगेश बोला—"मैं तुम्हारा कम अनुगृहीत नहीं हूँ, देवी !"

पानी रुक चुका था । दोनों निकल कर अपने-अपने घर चले गये ।

—o—

आकाश-भ्रमण

ग्रीष्म अपनी सीमा पर है। सूर्य की तेजी तूर्णता को प्राप्त कर रही है। वायु उच्छृंखल हो उठा है। गङ्गा के शान्त जल को पवन अपनी तेजी से हलकोरता है।

पवन—अहा कैसा आनन्द है। कितने हल्के हम हो गये हैं। सूर्य ने मानो पर लगा दिये।

जलकण—(उछलता हुआ) कौन, पवन भैया ?

पवन—हाँ रे, जल के ऊपर से होकर दौड़ने में दिल में कैसी ठण्ढक आती है। अभी उस ओर से निकला था, धूल से पूरा भर गया।

जलकण—किधर की बातें कहते हो पवन भैया ?

पवन—तुम कैसे समझ सकते हो इन बातों को जलकण ! कल-कल शब्द करते हुए उस खाड़ी की ओर बढ़ते जाओ, जहाँ समुद्र से मिल तुम्हें अपना अस्तित्व भी खो देना है। भई, दुनिया में सिर्फ जमीन के दो किनारे, नीला आकाश और जल नहीं हैं। कितनी ऐसी चीजें हैं जिनकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते।

जलकण—(उदास होकर) यह हमारी किस्मत है पवन भैया ! जब भगवान् ने दो किनारों के भीतर बाँध दिया है तो हमारा क्या वश ?

पवन—यह भी कोई जीवन है ? मुझ से तो कभी न रहा जाय, उबल पड़ूँ।

जलकण—किससे कहते हो पवन भैया ! क्षणिक आवेश में उस दिन माँ क्रोध से उबल पड़ी थी । हमलोग खेतों और सड़कों तक पहुँच गये थे । पर फिर ज्यों के त्यों हो गये ।

पवन—कुछ भी हो जलकण, हमारा जीवन बड़े आनन्द का है । जहाँ चाहूँ, चला जाऊँ ।

जलकण—(बहुत उदास होकर) इन बातों का वर्णन कर फिर हमें क्यों तरसाते हो पवन भाई ?

पवन—(कुछ सोचकर) अच्छा रे जलकण, मेरे साथ घूमेगा ?

जलकण—(आश्चर्य से) कैसी बातें करते हो भैया, यह कैसे हो सकता है ?

पवन—हो क्यों नही सकता है ? मैं जो हूँ ।

जलकण—(अविश्वास से) तुम भी कैसा मजाक करते हो भैया ।

पवन—मजाक नही, सच कहता हूँ । रहो, किरण को बुलाता हूँ । ओ किरण, किरण देवी !

जलकण—किरण, वह क्या करेगी, दिन भर हमारी छाती छेदती रहती है । कुछ भी हो मैं पुरुष हूँ, उससे ज्यादा शक्तिशाली ।

किरण—(आकर) देखो पवन, जलकण को समझाओ । सूर्यदेव की शक्ति पर अविश्वास कर उसका बुरा होगा ।

जलकण—(ऊँचा होकर) बुरा क्या होगा, एक नारी से दब जाऊँ ऐसा नही हूँ । दिन भर छाती से लगाये रहता हूँ, वह दूसरी बात है ।

पवन—अरे तुम लोग झगड़ते क्यों हो ? और देखो जलकण, अगर आकाश की सैर चाहते हो तो कुछ देर शान्त रहो । अच्छा किरण, जरा इसे वे अपने पर तो लगा दो, फिर मै इसे उठाये लेता हूँ ।

किरण—ऐसे उद्दण्ड की तुम इतनी परवाह क्यों करते हो पवन ? अभी-अभी इसने कैसी-कैसी बातें मुझे कह दीं ।

पवन—उसकी बातों पर ध्यान न दो देवी ! वह चञ्चल है, पर उसका हृदय निर्मल है। अल्हड़ तरुण है, किरण। देखो, ज़रा जल्दी करो तो।

(किरण के विशेष स्पर्श से जलकण कल्लोलित हो उठा। उसके रूप में परिवर्तन होने लगा। पवन ने उसे उठा लिया।)

जलकण—अरे पवन भैया, मुझे भय हो रहा है, गिर तो न पड़ूँगा ? किरण अब भी छेड़ रही है।

पवन—डर मत जलकण, मैं इतना कमजोर नहीं हूँ कि तुम्हारा भी भार वहन न कर सकूँ।

जलकण—नीचे चारों तरफ की चीजें कैसी दिखाई पड़ रही है। तुम तो रोज देखते होगे, पवन भैया ?

पवन—हाँ, मेरे लिये उनमें कोई नवीनता नहीं।

(किरण जलकण को छेड़ती है। उसका पर और फैल जाता है।)

जलकण—(घबरा कर) अरे भैया, देखो किरण को।

पवन—घबरा मत तू। तेरा कुछ न होगा। तू ऊपर चला चल।

(किरण उसे बार-बार छेड़ती है और उसका पर ज्यादा से ज्यादा चौड़ा होता जाता है।)

जलकण—(झुँझला कर) अच्छा देख, मैं तुम्हें इसका मजा चखाऊँगा। मौका मिलने दे।

(किरण सिर्फ मुस्कुरा भर देती है। उसकी छाती से चिपक दूसरी ओर निकल जाती है। जलकण का रूप पर फैलने से बहुत बदल गया। वह पवन के साथ और ऊँचा उठता जाता है।)

(२)

(पवन धीर-गति से बहता जाता है।)

जलकण—मैं तुमसे कितना मिलता-जुलता लगने लगा, पवन भाई।

पवन---प्रभाव ही ऐसा है जलकण, जानते हो, यह परिवर्त्तन किसके कारण हुआ ?

जलकण---मुझे तो तुम ऊपर उठा लाये ।

पवन---मै तुम्हें कहाँ उठा सकता था जलकण, किरण ने मदद दी ।

जलकण---किरण, वह इतना कर सकती है ! मैं तो उसे कुछ नहीं समझता ।

पवन---नही जलकण, वह बहुत काम देती है । उससे मदद मिलती है । (दोनों और ऊपर उठते हैं ।)

जलकण---अहा कैसी विस्तृन जगह है । मैं घूमू तो किधर-किधर ? मेरे रहने की जगह कितनी छोटी लग रही है पवन भैया, जैसे किसी ने जमीन पर एक पतली रेखा खीच दी हो । छिः वहीं मैं रहा करता था !

पवन---(कुछ चिन्तित स्वर में) हाँ, जलकण ।

जलकण---(खुशी से मस्त होता हुआ) अब मैं यहीं रहूँ तो कैसा हो पवन भैया ? बड़ा मजा आये ।

पवन---हाँ ।

(जलकण का रूप अब तक पूर्णतः बदल गया है । उसने मेघ का रूप धारण कर लिया ।

जलकण---(आनन्द-मग्न हो, चारों तरफ नाचते हुए) अहा, यह भी एक जीवन है और एक उस छोटे जल के संग्रह के बीच का जीवन । राम राम ।

(३)

जलकण---(एकाएक काँप कर) अरे पवन भैया, यह क्या हुआ ?

पवन---(उपेक्षा से) क्यों, क्या हुआ जलकण ?

जलकण---(अस्थिर हो) देखो न कैसा हो रहा है । मैं फिर पहले जैसा हो रहा हूँ ।

पवन—(तेजी से दौड़ता हुआ) देख तो रहा हूँ जलकण।

जलकण—(घबरा कर) अरे, कहीं गिर न पड़ूँ? तुम मुझे सँभालते क्यों नहीं पवन भैया?

पवन—(दूसरी ओर मुँह कर के) अरे फिर तू पहले जैसा भारी हो गया जलकण। ओफ़, किरण नहीं रही।

जलकण—(कातर होकर) तो पवन भैया, क्या होगा?

(पवन सिर्फ़ तेजी से इधर-उधर दौड़ता है। पर जलकण इतना भारी हो जाता है कि उसे सँभालना असम्भव हो जाता है।)

जलकण—(करुण स्वर में) पवन भैया, ओ पवन भैया।

पवन.......।

जलकण—(द्रवित-सा होकर) बोलते क्यों नहीं पवन भैया? ओह किरण कहाँ गई?

पवन........।

जलकण फूट पड़ता है। साश्रुनयन हो उठता है।

करुण स्वर में—प...प...व...न...भ...भैं..या...भैं..।

(पवन सन-सन करता इधर-उधर दौड़ता है। और जलकण नीचे की ओर गिरने लगता है।)

(४)

(आकाश साफ है, सूर्योदय होता है। गंगा के निर्मल जल पर सूर्य की किरणें पड़ती हैं। पवन जल के ऊपर से निकलता है।)

जलकण—कौन, पवन भैया?

पवन—हाँ, जलकण।

जलकण—तुम फिर इधर कैसे भूल पड़े, पवन भैया?

पवन—(लज्जित-सा होकर) क्यों, मेरा इधर आना कोई नई बात तो नहीं। पर आखिर तू फिर यहीं आ गया।

जलकण---तो और क्या ? कहाँ-कहाँ घूमा, पर कहीं स्थिर रह सका ? आखिर जननी की गोद में आ, शान्ति मिली।

पवन---अच्छा जलकण, फिर कभी।

(जल को हलकोरता हुआ पवन चला जाता है। सूर्य ऊपर की ओर चढ़ता है।)

जलकण---(चौंक कर) अरे किरण, तू फिर आई ? पर देख तङ्ग न कर, वरना अच्छा न होगा।

(सूर्य और ऊपर आता है। किरण और तेज होती है।)

जलकण---(बनावटी क्रोध से) मैं एक न मानूँगा किरण। जब मौका आया तो छोड़ कर चली गई, अब आई है अपना चेहरा दिखलाने।

(अचानक किरण फीकी पड़ने लगती है। बादलों मे सूर्य छिपने लगता है।)

जलकण---अरे किरण, तू सचमुच चली। मैं तो मजाक कर रहा था, ठहरो तो।

किरण---(मुस्करा कर) फिर आऊँगी।

जलकण---(ऊपर की ओर देख कर) कभी मैं भी तो वहाँ था। ओफ़, मैं चाहता था कि पवन भैया--जैसा हो जाऊँ। कैसी खुशी से बादल घूम रहे हैं ? बेचारे को मालूम नहीं है कि थोड़ी ही देर बाद उनका क्या होगा। (कल्लोल करता है।)

---o---

तब और अब

१५ अगस्त, १९४२ ! तीन रोज पहले नाव जहाँ से चली थी, वहीं आज फिर वापस आ लगी। अभी मुश्किल से रात के आठ बजे होंगे, पर कभी गुलजार रहने वाले गंगा के तट पर अभी से गहरा सन्नाटा छाया था, मानो वातावरण में ही मातम समाया हो। करीब दर्जन भर फौलादी छाती रखने वाले अपने साथियों के साथ न जाने कितने कष्ट और संकटों का सामना करने के बाद, आज मैंने जब अपने शहर की इस परिचित जमीन पर कदम रखा, तो न जाने क्यों मेरा दिल एक दफा काँप उठा। आज पूरे एक हफ्ते से हम अपनी जान हथेली पर रखे घूम रहे हैं। सुख की लालसा और जीवन के माया-मोह को दफनाने में हम बहुत अंशों में सफल हुए हैं। इधर कुछ ऐसी घटनाएँ घटी, जिन्होंने मुझ-जैसे न जाने कितने देशवासियों की आँखों के सामने से एक पर्दा-सा हटा दिया, और फिर तो हमारे लिये मानो दुनिया का नक्शा ही बदल गया। हम बिलकुल नये तरीके से सोचने-विचारने लगे। पहले जिन वस्तुओं का मूल्य हमारी दृष्टि में बहुत था, वे ही आज महत्त्वहीन-सी लगने लगीं; और जिन विषयों पर सोचने तक की जरूरत हम महसूस नहीं करते थे, उन्हीं विषयों पर लगातार घंटों सोचते रहने का चस्का-सा लग गया। आज हमारे दिलों में देश-प्रेम की ऐसी भट्ठी सुलग रही

है, कि स्वयं झुलस कर, और सारे देश को झुलसा कर भी, विदेशी सत्ता के एक-एक निशान को मिटा देने की उत्कट लालसा हमें पागल बना रही है ।

यह पागलपन हमें कहाँ ले जायगा, इसका हमें पता नहीं, और इसकी हमें परवाह नहीं । अपने चारों ओर हम जो तबाही और बर्बादी देख रहे हैं, वह हमारी भट्ठी की आग को धधकाने का काम करती है । हम खुद जल जायँ तो जल जायँ, पर इस गुलामी को भी जरूर जला देंगे ।

पर आज अपने शहर की जमीन पर कदम रखने पर अपने दिल को काँपने और शरीर को रोमांच से भर जाने से मैं न रोक सका । जिस जमीन पर हमारे कदम पड़े हैं, उसका जर्रा-जर्रा हमारे लिये पवित्र है, फिर भी हम गुलाम हैं । इसी शहर में पैदा होकर खेल-कूद कर, आज बीस साल का हुआ हूँ; पर आज यह बात दिल को जितना छू रही है, उतना पहले कभी नहीं छूती थी । लगता है, जैसे यह एक बात तेज धार की छुरी बन, कलेजे को टुकड़े-टुकड़े कर रही है । कभी-कभी रह-रह कर खटक उठने वाली कसक ने आज कैसी असह्य पीड़ा का रूप धारण कर लिया है । कहा जाता है, कि काँटे की नोक भी जिस्म के भीतर रह जाती है, तो मवाद पैदा कर, कष्टदायक जख्म कर देती है । फिर यह खटक तो एक खंजर के समान थी, जो मूठ तक कलेजे में धँस गई थी । ताज्जुब तो यह है, कि इसके होते हुए भी हम जी रहे थे ।

अभी कुछ घंटे पूर्व जब हम नाव से उतरे थे, तो हमारे शरीर थकावट से चूर थे, और भूख से अँतड़ियाँ व्याकुल हो रही थीं । आज पूरे तीन दिनों से हमने जी भर खाया नहीं था । तबीयत डट कर दाल-भात खाने के लिये तरस रही थी । तीन रोज पहले हमने जब शहर छोड़ा था, तो हमारे पास शरीर पर पड़े कपड़ों के सिवा और कुछ नहीं

था। कुछ के पास फुटकर पैसे थे, पर पहले ही दिन वे उसी तरह लुप्त हो गये, जिस प्रकार गर्म तवे पर पड़ते ही जल की बूँदें लुप्त हो जाती हैं।

नाव से उतरते-उतरते अवधेश ने कहा—"अब भूख सहना मुश्किल हो रहा है।"

"सभी की हालत एक-सी है," मैंने कहा—"चलो, बाजार से कुछ ले आयें।"

"पर पैसे जो नहीं हैं।"

"अँगूठी बेच दी जायगी, पैसे हो जायँगे," मैंने, अवधेश के कंधे पर हाथ रख कर कहा—"हम तुम चल कर कुछ ले आयें। सब लोग खा लेंगे।"

"चलो," अवधेश ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

क्षुधा और श्रान्ति ने हमें इतना क्लान्त बना दिया था कि हममें इतनी शक्ति नहीं रह गई थी, कि विस्तार से बातें भी कर सकें। हम दोनों के कदम यह सोच तेजी से बढ़े, कि अभी पाँच मिनट में हम चहल-पहल से भरे शहर के गुलजार हिस्से में पहुँच जायँगे, जहाँ हम आसानी से अपनी जरूरत की चीजें इकट्ठी कर सकेंगे। यही ख्याल हमें उत्साह से आगे बढ़ने को प्रेरित कर रहा था।

तभी पीछे से हमारे एक साथी ने हमें चेतावनी दी—"देखो, विमल, जरा होशियारी से जाना। समय नाजुक है। खतरे में मत पड़ना।"

इन शब्दों ने हमारे कान खड़े कर दिये, फिर भी बिना कुछ कहे हम बढ़ते गये। पर हम चौकस हो गये।

हम बाजार पहुँच गये। पर हमने देखा, कि जहाँ इन वक्त आदमियों की रेल-पेल, सवारियों की चिल्ल-पों और बत्तियों की जगमगाहट रहती थी, वहाँ श्मशान की-सी शांति छाई हुई थी। हम पहले से ही इसका अनुमान कर चुके थे, और शहर को इस रूप में देखने की सम्भावना हमारे दिलों में मौजूद थी। फिर भी यह उदासी और मन-

हूलियत देख, छाती एक दफा धक-से कर गई। अधिकाँश दूकाने बन्द थीं। जो खुली थीं, वे भी बन्द हो रही थीं। सड़क पर सन्नाटा था। उस निर्जन, विस्तृत पथ पर अपने आपको अचानक पा, हम भौंचक रह गये।

अचानक एक दूकान से उतरते एक आदमी से हमारी मुठभेड हो गई। दूकान बन्द कर, वह शायद घर जाने को तत्पर था। हमें देख, ताज्जुब मे बोला—"कर्फ्यू का वक्त हो गया, और आपलोग घूम रहे है। जल्द घर लौटिये। ये गोरे बिना सोचे-समझे गोली मार देते हैं। उनकी लारियाँ आ ही रही होंगी।

"हमें बाजार से कुछ जरूरी सामान खरीदना था।"

"जान खोकर क्या खरीदियेगा, भाई?" वह उतावला हो, कुछ चिढ़े स्वर में बोला—"दूकानें भी तो बन्द हो गई है। जल्दी कीजिये, घर जाइये।"

"कर्फ्यू शुरू होने में कितनी देर है?" मैंने पूछा।

"पन्द्रह मिनट। वक्त बहुत कम है।"

और हम लौटने को मजबूर हुए। पर पेट की ज्वाला बहुत भीषण थी। खाली हाथ लौट अपने साथियों को हम निराशा से भर देंगे। मैंने अवधेश से कहा—"अवधेश, तुम वापस लौट जाओ। मैं जरा अपने डेरे तक जाता हूँ। शायद कुछ प्रबन्ध कर सकूँ।"

"इतनी जल्दी क्या कर सकोगे।?"

"देखूँ, शायद कुछ कर सकूँ। तुम वहाँ जाकर, साथियों को खबर दे दो, वरना वे चिन्तित होंगे।

"अच्छा! पर देर हो जाने पर रात में रुक जाना। गोरों की गोली खाने के बनिस्बत रात भर भूखे रहना बेहतर है।"

"घबराओ मत," मैने कहा—"जान की कीमत मैं बखूबी समझ गया हूँ । इसे व्यर्थ जोखिम में नही डालूंगा ।"

मैने तेजी से कदम बढ़ाये । दर्जन भर साथियों के भूख की सम्मिलित ज्वाला ने मानों मेरे पैरों में पर लगा दिये थे ।

पाँच मिनट में मैं अपने मकान के सामने था । मैने जेब में हाथ डाला । भाग्यवश कुंजी अपने स्थानपर थी । ताला खोल, दरवाजे को भीतर से लगा, मै अपने कमरे मे गया । बिजली जला कर, घडी की ओर देखा । कुछ पॉच मिनट का समय रह गया था ।

मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़ रह गया । इतने कम समय में क्या हो सकेगा ? इस मकान में मैं इधर एक मास से अकेला ही रहा रह था। पिताजी तो नौकरी के सिलसिले में बाहर ही रहते थे । माँ आदि भी करीब एक मास पहले वही चली गई थीं । मै कालेज के कारण यहाँ अकेला रह गया था, और पड़ोस के एक जातीय परिवार में भोजन कर लेता था । वे सम्बन्धी न होते हुए भी सम्बन्धियों से कही अधिक आत्मीय थे, और मुझ से एक अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करने की घोषणा कर चुके थे ।

एक दफा मेरे मन मे आया, कि वही चल कर देखूँ, और यदि पेट-पूजा के लिए कुछ मिल सके, तो शीघ्रतापूर्वक अपनी मंजिल पर पहुँचने की चेष्टा करूँ । दोनो मकान की छतें सटी हुई थीं । पारस्परिक घनिष्ठता ने इस मकान से उस मकान में जाने के लिए जिस प्रवेश-द्वार की सृष्टि कर दी थी, उसी द्वार से उधर जाने के विचार से मैं उठा ही था, कि पग-ध्वनि से चौंक कर मैने आँखें उठाई तो देखा कि सम्मुख कान्ति खड़ी है ।

रात्रि के इस सन्नाटे में अपने एकान्त मकान में इस शरारती लड़की को देख जो इतनी चंचल है कि यह जान कर भी कि उसके

ा मुझसे उसकी शादी करना चाहते हैं, मुझसे छेड़खानी करने से ज नहीं आती, मुझे बहुत ताज्जुब हुआ। फिर मन में अचानक ाल आया कि शायद भगवान ने उसे मेरी समस्या का हल निकालने लिये भेज दिया है। मैंने उससे पूछा—"तुम यहाँ कैसे चली आई, न्ति ? मैं बहुत संकट में हूँ ?"

मेरी बात का बिना जवाब दिये, उसने कहा—"आप एक हफ्ते कहाँ थे ?"

"यह एक मिनट में कहने की बात नहीं है, कान्ति, पर........."

पर मैं पूरी बात कहूँ, इसके पहले ही उसने कमरे की बत्ती बुझा ी, और आदेश के स्वर में कहा—"आप मेरे पीछे-पीछे चले आइये।"

कान्ति का विचित्र व्यवहार मुझे ताज्जुब में डाले हुए था। मैंने हा—"पर मैं बहुत जल्दी में हूँ, कान्ति।"

"तो आप जल्दी ही मेरे पीछे चले चलिये, और चुप-चाप चलिये।

और इसी तरह वह मुझे अपने मकान के एक सुनसान हिस्से के उस कमरे में ले आई, जिसमें उसके पिताजी की कानून की मोटी-मोटी पुरानी किताबें रहती थीं। उसने भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया और तब रोशनी जला दी।

कान्ति की हरकतें मुझे नाटकीय-सी लग रही थीं। आखिर इस लड़की को यह कैसी शरारत सूझी है ? मैंने कहा—"तुमने दरवाजा क्यों बन्द किया।"

"ताकि बाहर रोशनी न जाय।"

"आखिर क्यों ?" मैंने कुढ़ कर कहा—"देखो, कान्ति, यह मजाक का वक्त नहीं ? मैं बहुत जल्दी में हूँ।" इतना कह कर, जब मैंने कान्ति के चेहरे की ओर ध्यान से देखा, तो उसके गभीर मुखमंडल पर घबराहट और भय की छाया, देख, स्तब्ध रह गया।

"उतावले मत होइये", वह धीमे पर स्थिर स्वर में बोली—"आप जानते नहीं, कि आप कितने खतरे में थे। आपके मकान पर पुलिस की सख्त नजर है। दिन भर में न जाने, वह कितनी दफा इस मकान का चक्कर लगाती है। ऐसी हालत में उस कमरे में बत्ती जलना कितना खतरनाक था। तभी मैं नजर पड़ते ही दौड़ कर वहाँ पहुँची थी।"

"तुमने बहुत अच्छा किया, कान्ति !" मैंने आभार के भार का अनुभव करते हुए कहा—"खतरों से न डरने पर भी मैं पुलिस के हाथ में नहीं पड़ना चाहता। मैं कुछ करना या मरना चाहता हूँ, निकम्मों की तरह अपने को पुलिस के हाथ सौंप जेल की रोटियाँ तोड़ना नहीं चाहता। पर, कान्ति, मेरे साथी तीन दिन से भूखे हैं ? मैं उनके लिये भोजन चाहता हूँ।"

"कहाँ है आपके साथी ?" उसने पूछा।

"गंगा-किनारे नाव पर छिपे हैं। मैं उनके साथ ही उतरा था।"

"कैसे जा सकेंगे आप वहाँ ?" वह बोली—"लारियों की आवाज नहीं सुन रहे हैं नीचे ?" खिड़की से बाहर सिर निकालने पर भी वे गोली मारने से बाज नहीं आते।

"तो आज की रात यहीं बितानी होगी। आज रात भी फाका ही सही।"—मैंने कहा।

"आपके लिये कुछ भोजन लाऊँ ?"

"नहीं, कान्ति, अपने दर्जन भर साथियों को भूख से तड़पते छोड़ कर मैं अकेले नहीं खा सकूँगा। बहुत मेहरबानी होगी, अगर तुम रात भर में इतना तैयार कर दो, कि कल सुबह हम सबके लिए काफी हो।"

"लेकिन तब तो सब जग जायेंगे, और यह ठीक नहीं होगा।"

"सो क्यों ?" मैंने ताज्जुब से कहा—"माँ और बाबू जी से कह दो, कि मैं खाना चाहता हूँ। शायद किसी को एतराज न होगा।"

"पिताजी आपको यहाँ देखेंगे, तो उनके होश गुम हो जायेंगे। आप-जैसा सुशील और शांत लड़का ऐसा झक्की और नासमझ निकल गया, यह बात उन्हें व्याकुल किये रहती है। आपको वह इस मकान मे देखना तक नहीं चाहते, क्योंकि आपका यहाँ आना उनके विचार मे खतरे से खाली नहीं है।"

मैं चकित रह गया। एक सप्ताह में स्थिति इस भयंकर रूप मे बदल गई है। देश का मुँह देखने वाले लोग अब संकट के कारण समझे जाने लगे। हमारे देशवासी भी उनकी मदद करने के बदले, सकट के कारण समझ, उन्हें कुत्ते की तरह दुरदुराने में ही अपना कल्याण समझने लगे हैं। मेरा मन घृणा और कडुआहट से भर गया। अपने को सँभाल, मैंने कहा—"मैं तो देश के अधिक-से-अधिक लोगो को अपनी तरह झक्की और नासमझ बना देना चाहता हूँ। खैर, तुम्हारे पिता की बातों से मुझे मतलब ही क्या है ?"

"ऊँह", कान्ति के मुख से अनायास ही निकल गया।

मैंने कुछ समझ कर कहा—"यही न कि अब तक वह मुझे योग्य समझते थे, पर अब अयोग्य समझने लगे हैं ? वह सही समझते हैं, कान्ति। मै अब तुम्हें क्या सुख दे सकूंगा ? संभव है, कल मैं जेल के सीखचे के अन्दर रहूँ, परसों फाँसी पर लटका दिया जाऊँ। तुमने मिलते ही मुझसे पूछा था, कि मै एक हफ्ते तक कहाँ रहा ? मैं बिजली के तार काटता रहा, रेल की पटरियाँ उखाड़ता रहा, सरकारी दफ्तर जलाता रहा। इस सरकार को नेस्तानाबूद करने के जितने तरीके सूझे, सभी मैंने किये। अपने साथियों के साथ नाव पर दर्जनों गाँवों में गया, और वहाँ की जनता को अपनी तरह झक्की और नासमझ बनने की

सीख दी । कितने ही थाने लूट लिये गये, दारोगे जला दिये गये । आज बिहार का एक-एक गाँव दीवाना बन गया है । आज बिहार के देहातों से अँगरेजी राज उठ गया है । फिर यह सरकार हमारे खून की प्यासी हो जाय, तो इसमें क्या ताज्जुब है ? आज उसकी गोरी फौज हमारे शहर की छाती को रौंद रही है । मौका मिलने पर हमारा खून पीने से बाज थोड़े ही आयगी । बलि-पथ के इस पथिक को तुम्हारे पथ से हटाने की कोशिश कर, तुम्हारे पिता तुम्हारा भला ही कर रहे है ।"

मैंने देखा, कान्ति का चेहरा तमतमा गया था । मानो उसके दिल के अन्दर कुछ तीव्र भावनायें उठ रही हों, जिन्हें प्रकट करने को वह आतुर-सी हो । बोली—"देश की जिस मिट्टी ने आपको बनाया है, उसी मिट्टी ने मुझे भी बनाया है । मेरे दिल की भावनाओं का अन्दाजा आप अपने दिल की भावनाओं से लगा सकते हैं । फिर मुझसे ऐसी तीखी बातें कहने से फायदा ?"

मैं शर्मिन्दा हो गया । कान्ति के चेहरे पर दृढ़ता का जो भाव था, उसने मुझे प्रभावित किया । मैं, लज्जित हो बोला—"तुमसे मुझे कोई शिकायत नहीं, कान्ति । मुझे माफ करो । लेकिन जब घर की स्थिति प्रतिकूल है, तो इस तरह इसके एक एकान्त कोने मे आश्रय ले, तुम्हारे साथ रात काटना क्या उचित है ? मुझे यहाँ से जाना ही चाहिये ।"

"नहीं-नहीं," कान्ति घबरा कर बोली—"आप कहीं जा नही सकते । मैं अपनी जिम्मेदारी पर आपको ठहराये हुए हूँ । आप मुझे इतनी परायी न समझें ।" इतना कह, मानो उत्तरदायित्व के बोझ को न सँभाल सकने के कारण उस षोड़सी ने अपना सिर झुका लिया ।

"अपनी बदनामी का ख्याल न कर, इस संकट के समय आश्रय दे, तुमने मुझे अपना ऋणी सदा के लिये बना लिया। इस ऋण को मैं कैसे चुका सकूंगा ?"

"आप घबरायें नहीं," वह स्थिर स्वर में बोली—"ऋण चुकाने का आपको मौका मिल जायगा।"

"ईश्वर करे, ऐसा ही हो !" मैंने कहा—"पर इस समय तो उचित यही मालूम होता है, कि कमसे-कम मैं रात अपने कमरे में जाकर गुजारूँ।"

पर कान्ति राजी न हुई ? बोली—"उस मकान में आपका रहना ठीक नहीं। सुबह होने पर आप इस कमरे के बाहरी दरवाजे से निकल जाइयेगा।"

"तो तब तक तुम अपने कमरे में जा आराम करो। यहाँ तुम्हारा रहना ठीक नहीं।"

"मैं सुबह तक आपके पास रहूँगी। आपके दिमाग का क्या ठिकाना? न जाने कब कौन नई झक चढ जाय।"

"तो मुझे तुम कुछ कागज और कलम ला दो। मैंने डायरी नहीं लिखी है, वही लिखूं। भूख के कारण नीद तो आयगी नही।"

"अच्छा," कह कान्ति चली गई।

आत्मीयता और स्नेह का अपूर्व दान देनेवाली उस लड़की को म निर्निमेष दृष्टि से जाते देखता रहा। उसके आभार का भार मुझे बहुत प्रिय लग रहा था।

थोड़ी ही देर में कान्ति वापस आ गई। अपनी बाईं काँख के तले उसने कापी दबा रखी थी। कलम उसने अपने जम्पर के ऊपरी छोर में लगा लिया था। बायें हाथ से एक लोटा पकड़े, और दाहिने हाथ में एक पोटली लिये, वह व्यस्त-सी चली आ रही थी। पोटली

उसमें मेरे सामने रख दी। फिर कापी और कलम मेरे हाथ में देती हुई, बोली—"खाना तो आप न खायेंगे। कमसे कम पानी तो पी लीजिये।" और इसके पहिले कि मैं कुछ कहूँ, टेबुल से गिलास उठा, जल उसमें ढाल, मेरी ओर बढ़ा दिया।

मैं इनकार न कर सका। गिलास में पानी नहीं, मधुर और सुगंधपूर्ण शीतल शर्बत था। गिलास खाली कर रखते हुए, मैंने कहा—ऐसी चीजें देकर मेरी आदत मत बिगाड़ो, कान्ति। अभी न जाने क्या क्या सहना है।"

"पोटली में चूड़ा और बूंट है। शायद काम आ सके। साथ लेते जाइयेगा। मैं अधिक न कर सकी, इसका अफसोस है।"

"तुमने बहुत किया, कान्ति। ऐसी ही देवियां क्रान्ति की ज्वाला प्रज्वलित रखने में मदद देती हैं।"

कान्ति कुछ न बोली।

मैं कलम और कापी लेकर बैठ गया। वह बैठी मानो मेरी रखवाली करती रही।

आज करीब एक सप्ताह बाद मैं डायरी लिखने बैठा। कहने को तो मैं नियमित रूप से डायरी लिखा करता हूँ पर बहुधा ऐसा होता है, कि बीच-बीच में कई दिनों तक डायरी लिखने की सुधि नहीं रहती। बिना वजह ऐसा हो जाने से कभी-कभी मन में बहुत क्षोभ होता है। पर यह स्पष्ट है, कि इस दफा ऐसा अकारण नहीं हुआ। और आज जब सप्ताह भर बाद मुझे डायरी लिखने का अवसर मिला है, तो उस कारण का वर्णन करने का इरादा लेकर ही तो मैं बैठा हूँ।

इस एक हफ्ताह का वर्णन! ओफ! क्या यह मेरे वश की बात है? कहा जाता है, कि मुझ पर सरस्वती की कृपा है।

तब और अब

जब भावनायें हृदय में हिलोरें मारती रहती हैं, तो मेरी कलम की नोक से कागज पर उतरने के लिये शायद व्याकुल रहती है। पर आज मेरी सारी निपुणता व्यर्थ सिद्ध हो रही है। मेरी लेखनी में इतनी ताकत नहीं, कि इस सप्ताह जितनी घटनायें घटी हैं, और इनकी जो प्रतिक्रिया हुई है, उसे सफलतापूर्वक बयान कर सकूं।

यह वह सप्ताह था, जब सारे देश के चरण जलते हुए भीषण अंगारों पर पड़ रहे थे, जब सदियों के कठोर बंधन और रूढ़ियों की जंजीरें क्षण भर में टूट कर चकनाचूर हो रही थीं, जब हमारी आँखों के सामने इतिहास करवटें बदल रहा था। वह खून, पसीना, विपत्तियों और हाहाकार से भरा सप्ताह! वह दुर्लभ और दुर्वह सप्ताह! उसकी हर बात का वर्णन इस डायरी के सीमित पृष्ठों पर करना कठिन कार्य है।

मैं यह दावा नहीं करता, कि मैंने दुनिया देखी है। अभी-अभी तो मैंने अपनी बाईसवीं सालगिरह मनायी है। मैं यह दावा नहीं करता कि मैं इतिहास का विशेषज्ञ हूं। कालेज की कक्षाओं में ही तो पिछले चार वर्षों से मैंने इतिहास का कुछ अध्ययन किया है। पर अपनी कच्ची उम्र और अधूरे अध्ययन के बावजूद मैं पूर्ण विश्वास के साथ आज यह दावा करता हूँ, कि इस एक सप्ताह में मैंने जो देखा है, और जो सुना है, वैसा अब इस जीवन में न कभी देख सकूंगा, न कभी सुन सकूँगा। और इस सप्ताह की घटनाओं का भारत के इतिहास के निर्माण में जैसा हाथ रहेगा, वैसा भूतकाल या भविष्यकाल के शायद ही किसी एक सप्ताह का रहा हो या रहेगा। सचमुच मैं बहुत भाग्यवान हूँ, कि इस सप्ताह की घटनायें मेरी आँखों के सामने गुजरी हैं।

हाँ, मैं अपने भाग्य की सराहना करता हूँ—अपने ऐसे भाग्य की जिसने मुझे माँ का यह स्वरूप दिखलाया। सुनता था, कि दुष्टों का

संहार करने के लिए शक्ति की प्रतिमूर्ति देवी दुर्गा, माँ काली का विकराल रूप धारण कर, पृथ्वी पर अवतीर्ण हुई थीं। उनकी भयानक मुद्रा देख, दुष्टों के दल में खलबली मच गई थी, और सारी पृथ्वी हाहाकार कर उठी थी। माँ ने जब एक दफा विकराल रूप धारण कर लिया था, तो उन्हें शान्त करने की सभी कोशिशें बेकार गई थीं। विभिन्न शस्त्रों से सज्जित अपने अनेक करों द्वारा वह दुष्टों का निरन्तर संहार करती जाती थी।

मैंने अपनी आँखों से भारत माँ का वह विकराल रूप देखा है। भारत माँ के कंठ से आज भीषण रण-घोष निकल रहा है। उसके सहस्रों कर आफत ढाने में, अनचाही चीजों को उखाड फेंकने में पूरी शक्ति के साथ संलग्न हैं। और माँ के अनगिनत चरण दुष्टों की छाती रौंद रहे हैं। माँ के अनगिनत चरण आज गतिमान हैं। माँ के कोटि-कोटि हाथ सारी शक्ति से आघात कर रहे हैं। माँ के अनगिनत कंठ एक स्वर से चीत्कार कर रहे हैं। अजीब समाँ है। अजीब नज्जारा है। ऐसा दृश्य सदियों में कभी-कभी देखने को मिलता है।

और यह सब अचानक कैसे हो गया? कौन-सी ऐसी बात हुई जिसने माँ को ऐसा रौद्र रूप और ऐसी भीषण मुद्रा धारण करने को मजबूर किया?

अभी सप्ताह भर पहले की तो बात है। नित्य की तरह मैं साढ़े-दस बजे कालेज गया था, और ढाई बजे लौटा था। अखबारों में छपे बम्बई में हुए नेताओं के भाषण हम लोग दिलचस्पी से पढ़ रहे थे। पर मुझे जरा भी उम्मीद नहीं थी, कि यह आन्दोलन सफल होगा। सोचता था, कि यह गांधी की नई आँधी है, पिछली आँधियों की तरह गुजर जायगी।



गिनत चरण आज गतिमान हैं। माँ के कोटि-कोटि हाथ
आघात कर रहे हैं। माँ के अनगिनत कंठ एक स्वर से
है। अजीब समाँ है। अजीब नज्जारा है।

अपनी इस उपेक्षा के बावजूद हम उसमें, जिसकी होने की संभावना थी, दिलचस्पी लेने से अपने को रोक नहीं पाते थे । कालेज से लौटने पर मैं कुछ देर अखबार के पन्ने उलटता रहा, और आनेवाले दिनों में क्या परिस्थिति हो सकती है, इसकी कल्पना करता रहा। इन विचारों से जब दिमाग बहुत बोझिल-सा हो गया, और मस्तिष्क उलझ-सा गया, तो मैं कान्ति के यहाँ चला गया ।

कान्ति अभी स्कूल से नहीं लौटी थी । मैं बच्चों के साथ कुछ देर तक चुहल करता रहा, फिर वकील साहब, कान्ति के पिता, की मोटी-मोटी किताबों के पन्ने उलटता रहा । इसी तरह समय गुजरा।

चार बजे । कान्ति आई, तो मैं बोला—"न जाने क्यों आज तबीयत उचटी-सी लगती है । आज सिनेमा चला जाय ?"

सिनेमा के प्रति कान्ति की एक बड़ी कमजोरी थी, कि कोई भी फिल्म देखने का लोभ संवरण करना उसके लिये मुश्किल हो जाता था । पर आशा के प्रतिकूल आज वह बोली—"आज सिनेमा जाने का दिन नहीं है । बैठिये, और गांधी जी का भाषण पढ़िये ।"

"पढ़ चुका हूँ," मैंने कहा—"गांधीजी ने कहा है, 'करो या मरो' वक्त आने पर करूँगा या मरूँगा । पर अभी तो सिनेमा देखूंगा ।"

"तब तो आप कुछ कर चुके ! दो रोज कालेज छोड़ दीजिये, यही बहुत है ।"

"मैं सब-कुछ छोड़ दूं, पर तुम्हें तो नहीं ही छोड़ूंगा कान्ति ! आज तो सिनेमा चलना ही होगा ।"

और उस दिन हम सिनेमा गये ही ।

उसके बाद तो घटनायें तेजी से बढ़ीं । दूसरे रोज नेताओं की गिरफ्तारी हुई, फिर जनता का जबर्दस्त प्रदर्शन हुआ । मैं कभी उत्साह से, कभी विस्मय से, कभी कौतूहल से इन प्रदर्शनों को देखता रहा,

और उनमें हिस्सा लेना रहा। पुलिस की लाठियों के नीचे से गुजरते जुलूसों में सम्मिलित होता, और दिन भर सड़कों की धूल फाँकता रहता। रात में अपने किसी साथी के साथ सो जाता।

और यह ११ अगस्त की बात है। उस दिन दोपहर में मैं कपड़े बदलने के लिए डेरे आया। कपड़े बदल लिये, तो खाने के लिये नौकर बुलाने आया। खाते वक्त मैंने कान्ति से पूछा—"तुम भी स्कूल नहीं जाती ?"

"नही," उसने कहा।

"ठीक ही है।"

"आप रात में भी बाहर क्यों रह जाते हैं ? माँ पूछ रही थी।"

"थका-माँदा होस्टल में पड़ रहता था। आज चला आऊँगा।"

"आज जरूर चले आइयेगा।"

पर उस रोज मैं न आ सका। उस रोज का निकला हुआ आज ही मैं डेरे को लौटा हूँ, और कैसी बदली परिस्थितियों में। तब मैं स्वतन्त्र था, आज फरार हूँ,। तब मैं इस गृह का एक सम्मानित सदस्य था, आज एक अनचाहा व्यक्ति हो गया हूँ। पर स्वतन्त्र रह कर भी अपने देश को मैं स्वतन्त्रता से जितना दूर पाता था, आज फरार रह कर देश को स्वतन्त्रता के उतना निकट पा रहा हूँ।

वह शहर के पचीस हजार विद्यार्थियों की टोली थी। बिहार का प्रायः प्रत्येक शिक्षा प्राप्त करने वाला होनहार, मेधावी और तेजस्वी युवक उस जुलूस में सम्मिलित था। सूबे की जीती-जागती मानवता के वे चुने हुए नमूने थे। शिक्षा में, बल में, बुद्धि में देश को उनका भरोसा था।

और दूसरी ओर आध दर्जन गुरखे थे, और एक अँगरेज अफसर था। किसी भी सभ्य सरकार को उलट देने के लिए राष्ट्र की विभू-

तियों का यह जबर्दस्त प्रदर्शन काफी था। पर यहाँ आध दर्जन मस्तिष्कहीन, पुर्जो की तरह काम करनेवाले गुरखों ने उस अँगरेज अफसर के इशारे पर, गोलियो से उन्हें मार डाला। गोलियों से छिद कर उनकी लाशे, उनके जख्मी शरीर मैदान में तड़प रहे थे। माँ का आँचल मा के लाडलों के खून से तर किया जा रहा था। मैंने वह दृश्य अपनी आँखों से देखा, और मेरी आँखों में खून उतर आया। मैं हिंस्र पशु के समान पागल हो गया। फिर हम समझ नहीं रहे थे, कि हम क्या कर रहे हैं। मरने की परवाह न कर भी, हम कार्य किये जा रहे थे।

फिर दो रोज बाद ही मुर्दे-जैसे सफेद शरीरवाले और लाल मुहवाले आदमियों से मैंने शहर को भरा पाया। भारी-भारी बसों पर वर्दी पहने, हथियारों से लैस, वे गश्त लगा रहे थे, और सड़कों और चौराहों पर मोर्चेबन्दी किये हुए थे। ये सुदूर पश्चिम में समुद्र पार रहने वाली उस महान जाति के सदस्य थे, जिसका एकमात्र काम मानव का शिकार करना रहा है।

पचीस हजार प्रान्त के चुने हुए तरुणों पर आध दर्जन निरक्षर, उजड्ड सिपाहिड्डों द्वारा गोली चलवाने से राष्ट्र कैसा अनुभव करता है, यह उन्हें अच्छी तरह समझाना जरूरी है। जिस दिन पूर्व ऐसा कर सकेगा, विश्व का बहुत बड़ा कल्याण होगा।

ऐसे युवकों की कमी उस वक्त शहर में नहीं थी, जो मेरी ही तरह जलते मशाल बने हुए थे। हमने पटना शहर से अँगरेजी सत्ता का नाम निशान मिटा दिया। पर जब गोरी फौजों ने शहर में हमारी उपस्थिति असम्भव कर दी, तो हम दल बना देहातों में फैल गये। अपने एक दर्जन साथियों के साथ मैं भी गंगा-तट पर आया, और किनारे पड़ी एक नाव पर बैठ, चल पड़ा।

फिर तीन दिनों तक हम तट के दर्जनों गाँवों में घूमते रहे किसान हमें देख 'गांधी जी की जय' चिल्लाते । हम उन्हे समझाते कि "गांधी जी को अँगरेजों ने कैद कर लिया, उनका झंडा ऊंचा करने के अपराध में लड़कों को शहर में गोली से भून दिया गया, गांधीजी ने कहा है, कि अँगरेजों को भारत छोड़ने को मजबूर कर दो, अपने को आजाद मानो, उनके अफसरों की बात मत मानो, थानों पर कब्जा कर लो, लगान मत दो, जो रास्ते में आये, उसका नाम-निशान मिटा दो । चारों तरफ यही हो रहा है । तुम भी ऐसा ही करो ।"

तीन दिन तक दर्जनों गाँवों का दौरा कर हम तट पर वापस आये ।

अभी हमें यह काम जारी रखना है, तब तक जारी रखना है, जब तक विदेशी भारत नही छोड़ देते । आज हमारा दिल कटुता से भरा है ।

१५ अगस्त, १९४७ !

रात एक बज रहे हैं । कोई दूसरा दिन होता, तो मैं डायरी लिखने की जरूरत महसूस किये बिना, अब तक चारपाई की शरण में चला जाता । पर आज डायरी लिखने का लोभ मैं संवरण नहीं कर पा रहा हूँ । कारण स्पष्ट है । आज का दिन हमारे इतिहास का स्मरणीय दिन है ।

रात एक बजे तक जग कर भी मैं आज सुबह पाँच ही बजे उठ गया था । इतनी जल्दी उठ जाने के कारण मैं अपने को सराह ही रहा था, कि स्नानादि से निवृत्त हो, सामने से श्रीमती जी आती दीख पड़ीं । मैं ताज्जुब से बोला—"अरे, कान्ति, इतने सबेरे उठ कर तैयार हो गयी ! बात क्या है !"

"अजीब आदमी हो तुम भी !" कान्ति, मुझे झिड़क कर, बोली—"अब भी 'कान्ति, कान्ति' चिल्लाना तुम्हे अच्छा लगता है ?"

तब और अब

"आज तो कम-से-कम मुझे इस तरह मत झिड़को !" मैंने मुंह बनाकर कहा—"सुबह-सुबह तुम्हारा ही मुंह देखा है !"

"अच्छा-अच्छा, बहुत हुआ । अब बिस्तर छोड़ो । आज इस तरह सोने का दिन नहीं है ।"

"नहीं, आज का दिन तो ऐसा है, कि सुबह उठते ही झिड़कियाँ खाने को मिली है !"

"झिड़कियों के बाद बहुत-कुछ खाने को मिलेगा । तुम उठो तो सही ।"

"चाहे वे चीजें कितनी भी मधुर और स्वादिष्ट क्यों न हों, तुम्हारी झिड़कियों से मधुर तो न होंगी !"

"तो तुम बैठ कर झिड़कियाँ खाया करो ! मैं तो चली । मुझे बहुत काम है ।"

फिर दिन भर सचमुच हम बहुत व्यस्त रहे । सरकारी दफ्तरों पर हमने तिरंगा झंडा फहराते देखा । फौज को उस झंडे को सलामी देते देखा । गवर्नर को शहीद स्मारक की नींव डालते देखा ! और कई दावतें खाने के बाद थके-मांदे आठ बजे हम घर वापस आये ।

आध घंटे तक विराम लेने के बाद, मैंने कान्ति ने कहा—"चलो, कान्ति, अब जरा शहर की सजावट देख आयें ।" फिर सहसा जीभ दाब कर बोला—"माफ करो, मैंने तुम्हें 'कान्ति' कह दिया !"

कान्ति ने मुस्कुराकर कहा—"अच्छा, माफ किया !"

नौ बजे के करीब हमारी मोटर बाजार की ओर बढ़ रही थी । शहर में असाधारण उत्साह था । सड़कों पर तिल रखने की जगह न थी । चारों ओर सिर-ही-सिर नजर आते थे । इस भीड़ में मोटर

धीरे-धीरे सरक रही थी। मेरा शरीर रोमांच से भर आया। मैंने कान्ति का हाथ दबा कर, कहा—"कान्ति, आज ही के दिन इसी वक्त पाँच साल पहले का इसी जगह का दृश्य रह-रह मेरी आँखों के सामने नाच जाता है। कहाँ वह भयावह सन्नाटा, और कहाँ यह सम्मिलित होली, दशहरा और दीवाली! उस दिन इसकी कल्पना करना भी कठिन था!"

"कल्पना करना तो कठिन जरूर था," कान्ति बोली—"पर तुम दीवानों ने तो ऐसी ही कठिन कल्पना के भरोसे जीना सीख लिया था। आज से पाँच साल पहले देश के दीवानों ने जो त्याग किये, उसी का फल तो देश को मिल रहा है।"

"हम कितने भाग्यवान है, कि यह सब देख रहे है!" मै सड़कों और मकानों की सजावट को, फहराते हुए अनगिनत झंडों को मुग्ध हो देखता हुआ बोला—"आज मेरा जीवन सार्थक हुआ, यह सब देख कर, और वह भी तुम्हें बगल में बिठा कर देख कर!"

"ऊँह," कान्ति के मुँह से अनायास ही निकल पड़ा—"बड़े झक्की और नासमझ हो!"

"झक्की और नासमझ रह कर भी तो तुम्हारे योग्य बन ही गया! अब तुम्हारे पिता की बातों की मुझे क्या परवाह?"

"तुम्हारे पिता' क्यों कहते हो?" वह फिर झिड़क कर बोली—"पिताजी" कहो, और बड़ों की इज्जत करना और उनसे डरना सीखो!

"मैं सब करने को तैयार हूँ," मै गिड़गिड़ाकर बोला—"पर मुझे झिड़को मत!"

"ज्यादा बनो मत," कान्ति बोली—"नही तो झिड़कना ही क्या मैं तुम्हें मोटर से नीचे ठेल दूंगी!"

"यह भी कर देखो," मैंने कहा—"आज से पाँच साल पहले इसी वक्त तुमने जबरन मुझे आश्रय दिया था, और आज तुम जबर्दस्ती करोगी, तब भी मैं इस आश्रय को न छोड़ूंगा !" इतना कह, मैंने जोर से उसकी ऊँगलियाँ दबा दीं।

"उफ, !" वह चिल्लाई ।

कुछ फौजी लारियाँ सड़क से गुजर रही थीं, और सिपाही चिल्लाते जा रहे थे—"महात्मा गांधी की जय !"



नारी की ममता

बिहारी एक शांत स्वभाव का सीधा साधा युवक है। देहरादून उतर उसे किसी से मेलजोल बढाने की इच्छा नहीं थी। वह मसूरी के लिये बस पकड़ना चाहता था। लेकिन पिताजी ने उसे ताकीद कर दी थी कि देहरादून में मेहरचन्द जी से मिल कर चिट्ठी जरूर दे दे। पिताजी ने कहा था कि श्री मेहरचन्द जी उनके मित्र है और जब कभी उन्हें मालूम होगा कि बिहारी देहरादून आया और उनसे नहीं मिला तो उन्हें बड़ा सदमा लगेगा। ऐसी हालत में बिहारी ने मेहरचन्द से मिलना जरूरी समझा।

मेहरचन्द बिहारी से मिल कर बहुत खुश हुए। उस वक्त करीब साढ़े दस बजे थे और मेहरचन्द कपड़े पहन कहीं जाने को तैयार थे। बल्कि ड्राइवर कार का दरवाजा खोले खड़ा था। मेहरचन्द ने कहा, "बेटा, आज एक मुकदमे की तारीख है। लोगों ने एक गबन के मुकदमे में मुझे भी फँसा दिया है। ११ बजे तक पहुँचना जरूरी है। लौट कर आऊँगा तो तुमसे बातें करूँगा। पर पहले तुम्हें अपने सामने खाना खिला लूं। तब जाऊँ। थके माँदे आ रहे हो।"

"आप फिक्र न करें चाचाजी" बिहारी ने नम्रतापूर्वक कहा, "यह भी अपना घर है। मैं भोजन कर इत्मीनान से ठहरूँगा। आप काम हर्ज नहीं करें।"

"देखो रमेश भी आज बाहर चला गया है '।'—मेहरचन्द कुछ सोचते हुए बोले, "हाँ, मुन्नी घर होगी, ठहरो तुम्हें उसी के जिम्मे लगा देता हूँ ।"

मुन्नी को बुला मेहरचन्द ने कहा, "देखो बेटी, यह बिहारी बाबू हैं । पटना से आये हैं । मेरे घनिष्ट मित्र शम्भूशरण के पुत्र हैं । उन्हें भोजन करा देना और आराम का खयाल रखना ।"

"अच्छा पिताजी" मुन्नी ने कहा । मुन्नी साँवली-सी दुबली-पतली युवती थी । अवस्था करीब १८—१९ वर्ष की होगी ।

मेहरचन्द बहुत सम्पन्न और सुरुचिपूर्ण प्रतीत हो रहे थे । साफ सुथरा बगला अच्छे फर्नीचरों से सजा था । सामने की फूलवारी बहुत अच्छी हालत में थी । एक कार पर अभी मेहरचन्द गये और सामने गैरेज में दूसरी गाड़ी दिखलायी पड़ रही थी ।

मुन्नी ने बिहारी को ड्राइङ्ग रूप में बिठाया और पूछा, "आप स्नान करेंगे न ?"

"उन कामों से मैं स्टेशन पर ही निबट चुका हूँ ।" बिहारी ने सकुचाकर जवाब दिया ।

"तो आपके भोजन का प्रबन्ध करूँ । आप इस वक्त फुलके खाते हैं या चावल ?"

"मुझे कोई खास आदत नहीं । कुछ भी खा सकता हूँ । यदि चावल तैयार हो तो मेरे लिये फुलके बनवाने की जरूरत नहीं ।"

"शायद आप समझते हैं फुलके तैयार करने में मुझे कुछ तकलीफ होगी" मुन्नी मुस्कुरा कर बोली, "तब तो मैं आपको फुलके भी जरूर खिलाऊँगी ।"

"तो खा लूंगा" बिहारी ने सरल भाव से कहा, "मुझे कोई एतराज नहीं ।"

बिहारी के सरल जवाब से इस दफा मुन्नी हँस पड़ी।

भोजन के समय दोनों का परिचय भी पूर्ण हो गया। मुन्नी ने बतलाया कि उसने इस दफा बी० ए० की परीक्षा दी है और परीक्षा-फल का इन्तजार है। बिहारी ने बतलाया कि ग्रैजुएट होने के बाद उसने बी० एल० किया और पाँच साल से वकालत कर रहा है। यूं तो नये वकीलों की हालत उतनी अच्छी नहीं लेकिन चूंकि उसने इन-कम टैक्स और सेल्सटैक्स के महकमें में विशेष तौर से काम शुरू किया है, अपेक्षाकृत उसकी हालत बुरी नहीं है।

भोजन के बाद वे दोनों फिर ड्राइङ्ग रूप में आकर बैठे। बिहारी ने पूछा, "शाम को आखरी बस मसूरी कितने बजे जाती है ?"

"आप यह क्यों पूछ रहे हैं ? आज ही आये हैं और आज ही चल देंगे यह कैसे हो सकता है।"

"चाचाजी कब तक लौटेंगे ?"

"पाँच बजे के पहले नहीं लौटेंगे और आखरी बस पांच बजे खुल जाती है। आप कैसे जा सकते हैं ?"

"मसूरी जल्दी पहुँचने की इच्छा हो रही है। यहाँ तो कुछ देखने लायक जगह है नहीं ?"

"आपने खूब याद दिलायी" मुन्नी कुछ सोच कर बोली, "चलिये आपको सहस्रधारा घुमा लाऊं। यहाँ बैठे आपकी तबीयत नहीं लगेगी और आप जाने का जिद करेंगे।" इतना कह मुन्नी मुस्कुरा पड़ी और उसके सुन्दर चमकीले दाँत चमक पड़े।

"सहस्रधारा कितनी दूर है ?"

"ज्यादा दूर नहीं है। कार से दो तीन घंटे में लौट आयेंगे। अच्छा रहेगा। तीसरे पहर की चाय हम वहीं लेंगे।"

"लेकिन चाचा जी से पूछा नहीं ?"

"आप को घुमाया जाय इसमें पिता जी को क्या एतराज हो सकता है! बस आप तैयार हो जाइये। मैं इन्तजाम करता हूँ।"

उस तेज और चपल युवती ने आध घंटे के अन्दर तैयारी कर ली। कुछ जरुरी सामान और चाय और नाश्ते की चीजें कार पर रख दी। साथ अपने ८ साल के छोटे भाई को ले लिया और खुद कार निकाल चलने को तैयार हो गई।

८

जब मुन्नी खुद कार ड्राइव करने बैठी तो बिहारी कुछ विस्मित हुआ। जब कार के पीछे का दरवाजा खोलने लगा तो मुन्नी बोली, "आगे बैठिये, पीछे क्यों बैठते हैं। सुरेश तुम पीछे बैठो।"

बगल में बैठी कार ड्राइव करती हुई मुन्नी को बिहारी ने ध्यान से देखा। वह छरहरे बदन की औसत कद की युवती थी। रंग गेहुँआ था पर चेहरे पर अपूर्व लावण्य था। दुबली पतली थी। पर कपोलों पर स्वास्थ्य की लाली थी। इस वक्त वह सफेद साड़ी और बूंदों वाली छींट की ब्लाउज पहने थी। उसके लम्बे घने और चमकीले काले बाल साधारण रूप से सँवारे गये थे। हवा के झोंके से बालों के कुछ लट उसके चेहरे पर अठखेलियाँ कर रहे थे। वह इतमीनान से कार ड्राइव कर रही थी।

बिहारी इस ड्राइव में बहुत आत्मसन्तोष का अनुभव कर रहा था। वह सोच रहा था इस तरह की पढ़ी लिखी, सुरुचिपूर्ण, सीधी साधी, मधुर स्वभाव की निःसंकोच और लावण्यमयी युवती से बातें करने में सचमुच कितना आनन्द आता है। उसे मुन्नी से बातें करने की जबर्दस्त इच्छा हो रही थी। पर वह समझ नहीं पा रहा था कि क्या कहे और फिर डर रहा था उसकी बातों से ड्राइव करने में असु-

विधा न हो । वह सोच रहा था उसे आज का अखबार ले लेना चाहिये था जिसे रास्ते में पढ़ता जाता ।

मुन्नी ने कहा, "आप इतने सीधे हैं कि मुझे ताज्जुब होता है कि आप वकालत कैसे करते है । वह पेशा तो चालबाजों का है ।"

"यह आपने कैसे समझ लिया कि मैं सीधा हूँ ?" हँस कर बोला बिहारी ।

"यह समझना कोई मुश्किल नहीं है" मुस्कुरा कर मुन्नी बोली, "आपको देख कर तो कोई भी कह सकता है ।"

"आपने बी० ए० में साइकोलौजी लिया था क्या ?" बिहारी प्रफुल्ल मुद्रा में बोला, "लेकिन सीधे लोग अपने काम में बहुत निपुण होते हैं । सीधा वे इसलिए कहे जाते हैं कि वे बातें नहीं बना सकते और उनका व्यवहार निष्कपट रहता है ।"

"आप ठीक कहते हैं" मुन्नी बोली, "तभी दुनिया ऐसे लोगों की इज्जत करती है ।

बिहारी को बहुत खुशी हुई कि मुन्नी उसे इज्जत करने लायक समझती है । उसने पूछा, "एम० ए० में आपने क्या लेने का इरादा किया है ?"

"हिन्दी । मुझे साहित्य से शौक है ।"

"बहुत खूब" बिहारी बोला, "जो साहित्य के शौकीन होते है, वे सभ्य और सुरुचिपूर्ण होते है ।"

"आपको भी साहित्य प्रिय है क्या ?"

"यूँ तो कौलेज में मै साईंस पढ़ता था, फिर कानून के फेरे मे पड़ गया" बिहारी हँसता हुआ बोला, "लेकिन आपको सुन कर ताज्जुब होगा कि कौलेज में मैं कविजी के नाम से मशहूर था ।"

"तो आप कवि हैं" मुन्नी बोली। "तब तो सहस्त्रधारा में मैं आपकी कवितायें सुनूंगी।"

"ऐसी गलती मत कीजियेगा? यह शुहरत मुझे एक दोस्त की शरारत के कारण मिली थी। अगर मै गाने लगूँ तो शायद सहस्त्रधारा के पत्थर-चट्टान तक मुझ पर टूट पड़ें।" और इतना कह बिहारी खिलखिला कर हँस पड़ा।"

वे सहस्त्रधारा पहुँच चुके थे।

३

प्लेटों में समोसे, कुछ मिठाई और नमकीन सजा मुन्नी चाय बनाने लगी। तीनों काफी थक गये थे और चाय के लिये आतुर हो रहे थे? "इस सुन्दर पिकनिक के लिये मैं आपको कैसे धन्यवाद दूं?" बिहारी ने कहा।

"आपके साथ मेरी भी तबियत बहल गई। फिर धन्यवाद कैसा? आप न आते तो दिन भर मक्खी मारती रहती।"

तीनों प्लेटों के साथ न्याय करने में जुट गये। बिहारी का चित्त बहुत प्रफुल्लित था और उसका स्वस्थ चेहरा खुशी से चमक रहा था।

"आप अकेले पहाड़ों की सैर के लिये चले आये हैं यह ठीक नहीं है" मुन्नी विनोद भरे स्वर में बोली, "आपने भाभी को साथ क्यों नही लाया?"

इस प्रश्न के सुनते ही बिहारी के चेहरे पर खुशी और प्रफुल्लता के जो भाव थे वे क्षण में काफूर की तरह उड गये। वह कुछ न बोला।

मुन्नी प्याले में चाय डालने में व्यस्त थी, बिहारी के चेहरे के परिवर्तित भाव को वह लक्ष्य न कर सकी। बोली, "कहिये यह आपका अन्याय नहीं है?"

"हाँ ।"

"तब ?"

"मैं मजबूर था मुन्नी" बिहारी भावावेश में बोला, "वह मेरे साथ कहीं नहीं जा सकती । वह इस दुनिया में नहीं है ।"

बिहारी के मुख से सहसा अपना नाम उच्चरित होते सुन मुन्नी ने चौंक कर अपना चेहरा ऊपर उठाया । बिहारी का चेहरा सूख गया था और आंखें भर आयी थीं । वह कंपित स्वर में बोल रहा था, "पिछले साल मेरे लाख कोशिश के बावजूद वह चल दी । एक पाँच साल का बच्चा है जो अपने मामा के साथ मंसूरी चला आया है । उसके बिना मैं रह नहीं सकता । फिर सुना उसकी तबियत खराब है । सभी काम छोड़ मैं उसी के लिये दौड़ा आया हूँ ।" उसकी आँखें छलक पड़ीं ।

मुन्नी मर्माहत हो गई और उसका चेहरा उतर गया । बोली, "माफ कीजिये, मैंने ऐसी बात कह दी जिससे आपको इतना दुख पहुँचा ।"

"नहीं-नहीं" बिहारी आकुल हो बोला, "मेरी बिगड़ी किस्मत को आप क्या कर सकती हैं ? मैं अपने दुर्भाग्य का शिकार हूँ ।"

फिर भी मुझे ऐसी बेवकूफी नहीं करनी चाहिये थी । अच्छा चलिये कुछ देर घूम लें फिर वापस लौटें ।"

बिहारी अनमना सा बोला—"कुछ देर आराम कर लिया जाय ।"

"चलिये भी" मुन्नी बोली, "नवयुवक होकर इतनी जल्दी थक जाते हैं । मैं अभी मीलों चल सकती हूँ ।"

मुन्नी का अनुमान था कि इस पर बिहारी कुछ विनोदपूर्ण बात कहेगा पर बिहारी अन्यमनस्क और चुप रहा ।

मुन्नी ने उसका हाथ पकड़ लिया और बोली, "चलिये, यूं मुस्त बन कर नहीं बैठना चाहिये ।"

मुन्नी के आत्मीय-सा व्यवहार और स्नेहपूर्ण अनुरोध से बिहारी उठ बैठा और बोला, "चलिये ।"

कुछ दूर दोनों चुप चलते रहे । बिहारी बिलकुल गुमसुम था । मुन्नी ने कई दफा उसकी ओर दृष्टि डाली । फिर उसके कँधे पर हाथ रख स्नेह भरे स्वर में बोली, "आप पटना अकेले रहते हैं ?"

"हाँ" बिहारी का जख्म जैसे फिर कुरेद दिया गया हो ।

मुन्नी ने दाँतों ऊँगली काटी । उसे अपनी गलती महसूस हुई । बात बदलती हुई बोली, "भई मुझे यह बात समझ में नहीं आई कि किसी दोस्त की शरारत से कोई कवि कैसे मशहूर हो जायगा ।"

"मेरा वह दोस्त बहुत ही मखौलिया और करामाती है हालाकि पटना में वह मुझसे भी ज्यादा मोथा मशहूर है । उसने एक मित्र का नाम रानाफुस्का रख दिया था और यह नाम सारे यूनिवर्सिटी में मशहूर हो गया था ।" और इतना कहते बीते दिनों की याद आने से बिहारी के मुख पर मुसकान की एक फीकी रेखा खिंच गई ।

"राना फुस्का का क्या मतलब होता है ?" मुन्नी ने उत्साहित हो पूछा ।

"यह बायलौजी का टर्म है" बिहारी संस्मरणात्मक मुड में था, "राना टेगरिना और हाइड्रा फुस्का दो किस्म के मेढक का नाम है वह महाशय बहुत मोटे और काले थे । चेहरा भी अजीब था । मेरे दोस्त ने उनका नाम रानाफुस्का रख दिया और अपनी एक दो कहानियों मे रानाफुस्का नाम दे सारे युनिवर्सिटी में वह नाम मशहूर कर दिया इस नाम के चलते उन महाशय को कितनों से झगड़ा हुआ पर मेरा

दोस्त उससे हमेशा घनिष्ट बना रहा हालाँकि सब शरारत की जड़ वही था ।"

"आखिर रानाफुस्का ऐसा करते क्यों थे ?"

"वह डरते थे कहीं अपनी और कहानियों में उस नाम को दे वह उसका प्रचार अधिक कर दे । उसकी कहानियाँ हिन्दी के अनेक पत्रों में निकलती थी ।"

"क्या नाम है ?"

बिहारी ने बता दिया ।

"अच्छा" मुन्नी बोली, "मैंने पढ़ी है उनकी कहानियाँ । लेकिन जिस तरह रानाफुस्का बनने के लिये उन महाशय को मेंढक की शक्ल का बनना पड़ा था कवि बनने के लिये आपको कुछ कवितायें जरूर करनी पड़ी होगी ।"

"हाँ" बिहारी हँस कर बोला, "कवितायें पढ़ता था । शौक हुआ तो एक दो कवितायें बना डाली । मेरे दोस्त ने उन्हें अखबारों में प्रकाशित करा दिया और एक दो कविसम्मेलन में उसका कर मुझे खड़ा कर दिया । फिर मैं कुछ दिनों के लिये एक ऐसा कवि बन गया जिसका नाम होस्टल की दीवालों तक सीमित रहता है ।

मुन्नी हँस पड़ी । बोली, "आपके कवि बनने का इतिहास तो काफी रोचक है ।"

बिहारी हँस पड़ा । मुन्नी सन्तोष और आनन्द का एक निःश्वास ले बोली, "चलिये अब लौटा जाये ।"

४

कार चली तो बिहारी के मस्तिष्क में एक बिचार कौंध गया । आखिर यह युवती मुझ जैसे नवपरिचित आगन्तुक के प्रति क्यों इतनी आत्मीयता प्रदर्शित कर रही है । और जब से इसे मालूम हुआ कि

मेरी पत्नी नहीं है इसके अपनत्व की भावना बढ़ गई है और मेरे प्रति इसका व्यवहार ज्यादा घनिष्ट और स्नेहपूर्ण हो गया। बिहारी के दिल में गुदगुदी होने लगी।

बिहारी को भावमग्न देख मुन्नी बोली, "कवियों जैसी सोचने की आदत तो आप में है। चलिये आज शाम को आपको सिनेमा दिखलाऊँ। आप सिनेमा पसन्द करते हैं ?"

"कभी-कभी देखना पसन्द करता हूँ।"

डेरा लौटते लौटते पाँच बज गये। वहाँ बिहारी के लिये एक तार इन्तजार कर रहा था। बिहारी ने खोल कर पढ़ा, "बच्चा की हालत चिन्ताजनक है। तुरत चले आइये।"

बिहारी ने तार मुन्नी के हाथ में दे दिया और बोला, "मेरे दुर्भाग्य का अन्त नहीं।" उसकी आवाज भर्रा गई और आँखें भीग गईं।

मुन्नी भौचक बनी उसकी ओर देखती रही। बोली, "आपको तुरत जाना चाहिये न। चलिये देखू बस मिल पाती है या नहीं ?"

"चाचाजी नहीं आये ?"

"मैं उन्हें समझा दूंगी।" इतना कह मुन्नी अन्दर चली गई। पाँच मिनट मे एक तौलिया में कुछ कपड़े लपेट बाहर आई और कार की ओर बढ़ती बोली, "चलिये।"

"यह क्या है ?" तौलिया की ओर इशारा कर बिहारी बोला।

"अपने कुछ कपड़े ले लिये है। यदि बस नहीं मिली तो आपको मसूरी तक पहुँचा दूंगी। कल लौट आऊँगी।"

"मेरे लिये इतनी तकलीफ कीजियेगा।" बिहारी बोला, "चाचाजी से पूछा भी नही।"

"सुरेश को कह दिया है। वह पिताजी को कह देगा।"

मुन्नी ने कार रफ्तार से छोड़ दी । बस स्टैंड आने पर मालूम हुआ, बस छूटे दस मिनट हो गये । बिहारी उदास हो गया । मुन्नी बोली, "आप घबराइये नहीं । आज शाम आप मसूरी रहेंगे । चलिये । पुल के नजदीक बस रुकती है । हो सकता है वहाँ मिल जाये ।"

मुन्नी ने कार की रफ्तार बहुत तेज कर दी । बिहारी ने कहा, "आप यह क्या कर रही हैं ? मेरी खातिर अपने को खतरे में मत डालिये ।"

"आप घबराइये मत" मुन्नी हँस कर बोली ।

पुल के नजदीक बस मिल गयी । बिहारी ने टिकट कटा सामान रखवा लिया । मुन्नी से बोला, "मुझको समझ में नहीं आता आपको किस तरह धन्यवाद दूँ ।"

"कोई जरूरत नही इसकी" मुन्नी मुस्कुरा कर बोली, "लौटती दफा आपको यहाँ एक दो दिन रुकना होगा । मैं पिताजी से कह दूगी ।"

"अच्छा" बिहारी बोला । बस अब चलने को तैयार थी ।

मुन्नी आँखें नीची कर शर्माती हुई बोली, "आप पहाड़ मन बहलाने आये और मैंने ऐसी बात कह दी कि आप दिल से दुखी हो गये । मै उस वक्त से ग्लानि से मरी जा रही हूँ और हजार कोशिश करती रही कि आपको पहले-सा प्रफुल्लित कर दू । मैं जानती नहीं थी । मेरी नादानी माफ कर दीजियेगा ।" इतना कहते कहते उसकी आँखें भर आईं ।

"धत्, आप तो अजीब पागल हैं" बिहारी विस्मय से अवाक् हो बोला, "आप इतना दुखी क्यों है ? देखिये मैं बिलकुल खुश हूँ ।"

बस स्टार्ट हो गयी । मुन्नी ने अपने हाथ जोड़ दिये ।





नारी की ममता

बस पर बैठा बिहारी सोच रहा था कि वह कितनी नीच प्रकृति का जीव है। जिसे वह स्त्री का स्वार्थपूर्ण और वासनामय प्रेम समझ रहा था वह तो नारी की निःस्वार्थ और पवित्र ममता थी जिसकी हमेशा से उनमें बहुतायत रहती है। उसका शरीर रोमांच से भर उठा।



रूप का मोह

उर्मिला की स्मृति ही महेश के लिये संसार में सब से बढ़कर मधुर है। आज वह एक उच्च पद पर है और कार्य के उत्तरदायित्व के भार से फुरसत कम ही मिलती है। पर अभी तक उसने शादी नहीं की है; अब शायद वह शादी करेगा भी नही। जब कभी एकान्त खलता है तो उर्मिला की याद ताजी हो जाती है। सब से ज्यादा स्पष्ट होकर आता है उसके सम्मुख उर्मिला का वह गोरा सुन्दर चेहरा। उस चेहरे की स्मृति आज भी उसे मंत्रमुग्ध कर देती है और उस चेहरे की याद ही उसे किसी अन्य युवती के प्रति आकर्षित नही होने देती। महेश सनकी आदमी है; उसकी सनक आसानी से दूर नहीं होती।

महेश और उर्मिला एक दूसरे से समुद्र और नदी की तरह नहीं, वरन् वृक्ष और उसके नीचे कुछ घड़ी के लिये ठहरे मुसाफिर की तरह मिले थे। कभी-कभी- मुसाफिर को किसी खास वृक्ष की छाया बहुत भा जाती है। छाया की शीतलता, वृक्ष की सघनता, निकट के अनुपम दृश्य, आँखों पर चढ़ जाते है और उनका भूलना मुश्किल हो जाता है।

महेश के दिल पर यों बहुत कम तसवीरें उतरती हैं, पर जो तसवीरें उतरती हं, वे मानो पक्की होकर उतरती ह।

रूप का मोह

उर्मिला और महेश पड़ोसी थे और जैसा कि स्वाभाविक था, इन पड़ोसियों में घनिष्टता थी। दोनों का बचपन साथ बीता था। एक दिन जब दोनों एक जगह थे तो महेश बोला— "आजकल मन नहीं लगता।"

"क्यों ?"—उसने पूछा।

"कालेज बन्द है, कुछ करना-धरना है नहीं; ऐसे बैठे-बैठे जी नहीं लगता !"

"मित्रों की मंडली इकट्ठी कीजिये, मन लगेगा।"

"ना; मेरे इतने मित्र हैं ही नहीं; खास कर ऐसे फिजूल लोग नहीं जिनका काम बेकार-हल्ला करना हो। फिर भी उनसे कुछ होने का नहीं। मुझे कुछ सूनासूना लगता है।"

"इसका कारण मुझे मालूम है, मैं जानती हूँ।" वह आँख के कोने से देखती हुई मुसकुराई। उसकी ऐसी हँसी महेश को बहुत भाती थी।

"तुम्हें क्या मालूम है ?"—महेश उपेक्षा से बोला।

"मालूम है।"—अब की मुसकराहट ओठों पर खेल रही थी।

"झूठ !"

"झूठ नहीं; साफ क्यों नहीं कहते कि सुनने में डर लगता है !"—उसकी हँसी कुछ खुल रही थी।

"हूँ ! डरूँगा क्यों ? मैं इसलिए कह रहा था कि मेरे कैरेक्टर को स्टडी करना आसान नहीं !"

उर्मिला सचमुच महेश की उपेक्षा और स्नेह के मिश्रित भाव से बहुधा खीझ उठती थी। रुक कर बोली—"अब आपको जनम मरण वाली संगिनी की जरूरत है।" और इतना कहते-कहते उसके चेहरे पर

लाली दौड़ आई और शरम को छिपाने के लिये वह जोर से हँस पड़ी ।

"सचमुच !"—महेश शरारत भरे स्वर में बोला—"कहाँ से लाऊँ ऐसी संगिनी ?" और भावहीन आँखों से, खीझा-सा गंभीर चेहरा बना उसने उर्मिला की ओर देखा ।

उर्मिला की आँखें अब शरम से और अपमान के भाव से झुक गई । गंभीर मुद्रा में बोली—"खोजना आपका काम है, पर कहना मेरा ठीक है ।"

महेश कुछ हँसकर बोला—"हाँ, हो सकता है, पर यह भी तो एक समस्या है !"

"मैंने ठीक ही कहा था न ?"

"पर संगी ढूँढ़ूँ कैसे ? कोई मदद नहीं देता । उर्मिला भी मदद नहीं देती !"—महेश ने कहा ।

"उर्मिला क्या मदद दे ?"

"वह बेवकूफ है !"—महेश ने हँसकर उसकी ओर देखा ।

"हाँ, दुनिया में सब से चालाक तो महेश बाबू हैं !"

"सब से चालाक हों या न हों, उर्मिला देवी से अधिक चालाक तो जरूर है !"

"अपने मुह मियाँ मिट्ठू !"

"मुझमें इनफिरियरटी कम्पलेक्स नहीं है !"—महेश कुछ चिढ़ा-सा बोला । इसी समय उर्मिला को माँ ने बुला लिया ।

कुछ दिनों के बाद महेश की शादी की बात जोर पकड़ती गई । उम्मीदवार कई थे और उर्मिला के पिता, महेश के पड़ोसी भी उनमें एक थे ।

दोनों के स्नेह की बात जानी हुई थी; फिर व्यवहार आदि में, तिलक-दहेज के मामले में उर्मिला के पिता दूसरों से कम न थे। अतः बात आसानी से तय हो गई। पर महेश की इच्छा थी कि इम्तिहान खतम ही कर ले। मेडिकल पूरा कर लेगा तो सिर का एक बोझ उतर जायगा; हलका सा हो जायगा। शादी एक साल के लिये स्थगित करने में कोई कठिनाई नही हुई। बातें तो सब तय थीं; एक वर्ष के लिये कोई जल्दी न थी।

शादी तय होने के बाद से उर्मिला की ओर महेश अधिक से अधिक आकर्षित होने लगा। पर उर्मिला उसके सम्मुख अब कम आती थी, और उसे देखने के लिये महेश अधिक से अधिक आतुर रहता। उसका गोरा सुन्दर चेहरा उसकी आँखों के सामने नाचता रहता। उससे एक प्रकार की ज्योति-सी निकलती दीख पड़ती, पूर्ण निर्मल चन्द्रमा का भान होता। वह सोचा करता, उसके संपर्क में आने के पहिले उसे भी, वैसा ही निर्मल, वैसा ही ज्योति-पूर्ण बना जाना चाहिये। वह बहुआ गभीर रहने लगा, कहानियों और उपन्यासों के पढ़ने में उसे नवीन आनन्द आने लगा। कभी-कभी उसकी गंभीरता सीमा तक पहुँच जाती, पर उर्मिला की एक झलक देखते ही उसके चेहरे पर मुस्कान की एक रेखा खिच जाती। उर्मिला शायद कभी इसे देख भी लेती, तब उसका हृदय उल्लास से भर जाता।.......

महेश अपनी कक्षा में सर्व-प्रथम हुआ। जीवन का मार्ग खुला था, नौकरी मिलने में कोई कठिनता न थी। दो परिवारों में आनन्द की लहरें बह रही थीं।

यह वह जमाना था जब देश महान् परिवर्त्तन के द्वार पर खड़ा था। गर्मी जब बढ़ जाती है, चाहे वह खून की गर्मी हो या सूर्य अथवा अधिकार की, तब उसका प्रभाव सघन को तरल बना देता है।

तरल वस्तु की, मात्रा बढ़ जाती है तो हवा का एक झोंका, थोड़ा-सा वेग, उसे चंचल कर देने को काफी है। कभी-कभी लहर तेजी से उठती है, चारो तरफ उथल-पुथल मच जाती है।

यहाँ एक वैसी ही तान सुन पड़ी थी। जैसा कि स्वाभाविक था, उथल-पुथल मच रही थी, हिलोरें आ रहीं थीं और उस लहर में लोग बहे जा र थे।

महेश इधर कुछ अनमना सा रहता था। उसके टेबुल पर कई पत्रिकायें पडी रहतीं। कभी-कभी एक खद्दरधारी व्यक्ति उसे कुछ पुस्तकें भी लाकर दिया करते थे। महेश उन पुस्तकों को ध्यान से पढ़ता और कभी-कभी वह चचल और विचलित सा हुआ दीख पड़ता पर तभी उसे एक गोरा सुन्दर चेहरा याद आ जाता और उसका मुख एकाएक चमक उठता।

बहुधा ऐसा होता कि उस खद्दरधारी सज्जन से महेश देर तक बहस करता रहता। महेश गरम हो जाता, पर वह सज्जन सदा शान्त भाव से मुसकराते हुए बातें करते रहते। धीरे-धीरे उस तरह के लोगों से महेश की घनिष्ठता बढ़ती गई; कभी-कभी तो उसके कमरे में लोगों का जमघट हो जाता।

एक रोज महेश के पिता बहुत देर तक उस भद्र पुरुष से अपने कमरे मे बातें करते रहे। उनके चले जाने के बाद वह कुछ अनमने हो कमरे में घूमने लगे; ललाट पर चिन्ता की रेखायें खिच आई थीं। महेश सामने से निकला तो उन्होने पूछा—"क्यों महेश, अपनी जिन्दगी बरबाद कर देने का मन है क्या ?"

महेश की गर्वपूर्ण आँखें उठीं और नम्रता से झुक गईं; "कोई वैसा काम तो मैं नहीं करता !"

"क्या तुम चाहते हो कि तुम्हारी सारी जिन्दगी गरीबी और तक-लीफ में कटे ?"

"मैं चाहता हूँ कि मेरी आत्मा सुखी रहे, आत्मा को दबाकर मैं अपने शरीर को आराम नहीं दे सकता।"

"तो तुम्हारा इतना पढ़ना-लिखना सब बेकार गया !"—महेश के पिता व्यथित स्वर में बोले ।

"हुनर आ गया तो बेकार नहीं जायगा । मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मै भूखों नहीं मरूँगा, न मेरे कारण कुल की बदनामी होगी ।"

"सरकारी नौकरी तो तुम्हें नहीं मिलेगी महेश !"

"इस सरकार को हम रहने ही न देंगे, उसकी नौकरी करना तो अलग !"

"ये फिजूल बातें हैं, भला यह भी मुमकिन है ?"

"इस बात पर मैं आपसे बहस न करूँगा पिता जी ! पर मैं गलत रास्ते पर नहीं हूँ ।" और वह तेजी मे बाहर चला गया ।

शादी तय होने के बाद से महेश उर्मिला के पिता के यहाँ कम जाया करता था । इधर तो महीनों से वह वहाँ नहीं गया था । आज उसे वहाँ से निमन्त्रण मिला था, कि शाम का खाना वह वहीं खाये । महेश ने कहला भेजा, शाम को वह आयगा । हृदय मे गुदगुदी सी उठने लगी थी । गोरा सा सुन्दर मुख पूरी ज्योति और निर्मलता के साथ आँखो के सम्मुख घूम गया ।

पर उस दिन दोपहर को जो वह घर से बाहर गया तो रात को दस बजे के पहिले न लौट सका । उर्मिला के यहाँ गया तो बहुत देर हो गयी थी । माँ ने उर्मिला से महेश को खाना खिलाने के लिये

कहा। जब वह हट गई तो उर्मिला ने कहा—"खाना तो सब ठंडा हो गया!"

महेश "हूँ!" कह कर रह गया।

कुछ देर तक शांति रही। फिर अचानक उर्मिला बोल उठी—"आजकल किसके पीछे इतनी रात तक फिरा करते हैं?" शब्द तो ये उसके मुख से निकल गये, पर वह जैसे शरम से भर सी गयी।

महेश धीमे-धीमे मुसकराता रहा। तब उर्मिला भी मुसकरायी।

पाँच मिनट फिर शांति रही। महेश धीरे-धीरे खाता जा रहा था। बिना सिर उठाये उसने कहा—"क्या तुम समझती हो तुम्हारे सिवा दुनिया में मैं किसी दूसरे को नहीं चाहता?"

उर्मिला सहम गयी। उसका चेहरा पीला पड़ गया, काँपते हुए स्वर में बोली—"मैंने ऐसा कब कहा? किसी पर मेरा अख्तियार ही क्या है?"

महेश ने चौंक कर सिर ऊपर उठाया, उर्मिला के करुण मुख की ओर देख कर बोला—"अरे, मैंने तो यों ही कहा था, तुम मेरा मतलब नहीं समझ सकीं। सयानी होकर भी बेवकूफ ही रह गयी!"

उर्मिला ने एक दफा आँखें उठा कर उसकी ओर देखा। महेश मंत्र-मुग्ध सा रह गया। पुलकित हो बोला—"तुम्हारे रहते मैं किसी दूसरी स्त्री की कल्पना भी कर सकता हूँ? कोई कैसा भी स्टारों जैसा बन कर क्यों न आये, मुझे भला भायेगी? दूसरी चीज जिसे मैं चाहता हूँ, उसे चाहने का अधिकार सब को है।"

उर्मिला की आँखें झुकी थीं।

"मैं तुमसे पूछना ही चाहता था। आज सभा थी। जगह दूर थी; आने में देर हो गई। व्याख्यान हो रहे थे, बीच में आ न सका। बोलो, भारत माँ से मैं प्रेम करूँ यह तुम्हें पसन्द नहीं? बोलो!

"मुझे बहुत पसन्द है !"

"सच !"—महेश पुलकित हो गया, "इस पूजा में मैं भी कुछ फूल चढ़ाऊँ, तुम पसन्द करोगी ?"

"जरूर !"

"आज मेरा हृदय बहुत हलका हो गया। पर मैं डरता हूँ। इस तरह जेल जाना जरूरी हो जायगा।"

उर्मिला बोली—"तो क्या आप जेल जाने से डरते हैं ?" उसके स्वर में आश्चर्य था।

"नहीं, पर तुम्हें कैसे पाऊँगा ? हमारी शादी रुक जायगी ! यही मुझे पसन्द नहीं।"

उर्मिला सोचती रही, सोचती रही, फिर बोली—"समाज को मोहर देना ही तो बाकी रह गया है। क्या सिर्फ उसी के अभाव में हम अलग हो जायेंगे ?"

"सच कहती हो उर्मिला ?"—महेश आनन्द से दबा जा रहा था, "तुम्हारा मन इतना बड़ा है ? अब मैं दूनी हिम्मत से काम करूँगा।"

खाना खतम हो चुका था। महेश बाहर जाकर हाथ धोने लगा। हृदय में जाने कितनी खुशी भर गई थी !..........

और वह महीना खत्म होते न होते महेश जेल के अन्दर था। उसे साल भर की सजा हुई थी। उसे हजारीबाग जेल में भेज दिया गया।

उर्मिला के पिता और महेश के पिता कई दिनों तक संध्या समय इकट्ठे हो बातें किया करते। महेश का भविष्य नष्ट हो गया, यही उर्मिला के पिता का विश्वास था। वह डाक्टर है। प्राइवेट प्रैक्टिस करके भी अपने लायक कमा सकता था। पर सरकार के खिलाफ जिसने सर उठाया।

हुआ उसे कहीं चैन मिलता है ? तबाह हो जायगा ! फिर जेल में ठूस दिया जायेगा, दर-दर की ठोकरें खाता फिरेगा । उर्मिला को कुएं में ढकेल देना ठीक होगा पर महेश के साथ शादी करना ठीक नहीं। शादी स्थगित कर दी गई । पर लड़की भी बडी हो गयी है ।

उर्मिला को मालूम हुआ तो उसका हृदय 'धक्' से रह गया ? उसे प्रबल इच्छा हुई कि वह विरोध करे, पर कैसे ? उसे कुछ सूझा नही । वह सदा सोचती रहती, पर उसने सदा अपने को निरुपाय सा पाया ।

तो क्या वह अपने को समाज की बलिवेदी पर अर्पित कर दे? दिन बीत रहे थे और उसे पता चला कि उसकी शादी ठीक हो गयी है! फिर धीरे-धीरे शादी के दिन निकट आने लगे । अन्त में, कुटुम्बियों से घर भर गया । और एक रोज बारात आ गई '! दो तीन रोज चहल-पहल रही, फिर एक पराये पुरुष के साथ वह चली गई । वह रो रही थी, भीतर से दिल से ।

जेल में भी वह गोरा सुन्दर ज्योतिपूर्ण निर्मल चेहरा महेश को याद आता रहता । कभी-कभी वह पुस्तकें पढ़ने लगता, पर पुस्तकों पर भी वही मुखड़ा तैरने लगता ।.......

जेल से लौट कर आने पर महेश फिर अपने पुराने काम में जुट पड़ा । जिले के लोकप्रिय कार्य-कर्त्ताओं में उसकी गिनती होने लगी थी । अचानक उर्मिला की शादी की खबर सुनी; उसका दिमाग 'झन्न' से हो गया । कुछ समय तक तो उसकी दशा ऐसी हो गयी जैसे उसके हृदय की, दिमाग की सारी शक्ति ही खतम हो गयी हो ।

महेश अनमना-सा रहने लगा । फिर जाने क्या सोचकर वह इंगलैंड के लिये रवाना हो गया ।......



चार वर्ष बाद वह विदेश से लौटा तो उसके पास डाक्टरी की कई ऊँची डिग्रियाँ थी । कुछ दिन तक तो वह देश में यों ही घूमता रहा । पर वह उस चेहरे को फिर भी न भूल सका था । अचानक सूबे में कांग्रेसी मंत्रिमंडल कायम हुआ तो उसे स्थानीय मेडिकल कालेज में एक ऊँचा पद दिया गया ।

× × ×

महेश की अवस्था अब पैंतीस वर्ष के करीब थी । उच्च पद पर था, अभी तक अविवाहित ही था । शादी का पैगाम लेकर कई लोग आये पर ऐसे मौकों पर उर्मिला की याद ताजी हो जाती । ऊब कर उसने कह दिया, "माफ कीजिये, मैंने कह दिया कि मुझे शादी करने की इच्छा नहीं है। इच्छा होगी तो अखबार में निकलवा दूंगा । आप को कष्ट की जरूरत नहीं ।"

और महेश हमेशा उर्मिला की याद करता रहता । पर उर्मिला कहाँ है, इसका पता लगाने की कोशिश उसने कभी न की। सोचता —उस खतरनाक रास्ते की ओर क्यों बढ़ूं ? उस चेहरे की याद, बीते युग की स्मृति ही, जिन्दगी के दिनों को किसी तरह काटने को काफी है । जिन्दगी किसी तरह बीत जायगी । चिन्ता क्या है ?

एक दिन महेश एक मरीज को देखने गया । मकान-मालिक स्थानीय दफ्तर में काम करते थे। डेढ़ सौ मासिक मिलता था । उनकी पत्नी बीमार थी ।

सज्जन के साथ आकर खाट के निकट रखी कुरसी पर वह बैठ गया । पत्रों में बहुधा उसने कार्टून देखे थे । बड़े-बड़े लोगों की तस्वीरें ऐसे बेढंगे तौर से बनाई जाती है कि देख कर बरबस हँसी

आती है । इस मरीज को देखकर ऐसा लगा कि मानो यह तीस वर्ष की युवती का कार्टून है !

चेचक के दागो से भरा चेहरा, पीला रंग, आँखे धँसी हुई, गाल पिचके हुए । खाट को घेरे चार बच्चे खड़े करुण दृष्टि से उस रमणी की ओर देख रहे थे और खाट पर कुछ मास का एक बच्चा पड़ा पैर फेंक रहा था । महेश के मन में आशंका हुई—'यह उर्मिला ही तो है ?' और उसने एक दफा गौर से युवती की ओर देखा और फिर मुह फिरा लिया !—

कलेजे पर मानो बिजली गिरी !

उनसे पूछा,—"यह बहुत दिनों से बीमार हैं क्या ?"

पतिदेव बोले, "हाँ साहब, ऐसी बीमारी से तो बाज आया । इस तरह बराबर खाट पर कोई पड़ी रहे, इससे तो अच्छा है कि मर जाय !"

उर्मिला की आँखों से दो बूंद आंसू निकल कर गालों पर ढुलक पड़े । उसने जल्दी से उन्हे पोंछ लिया ।

महेश हिम्मत कर के रोगी की जाँच कर, दवा वगैरा लिख चुका तो पूछा,—"आपके ससुर का नाम बाबू रामेश्वर प्रसाद तो नहीं था ? वह जो गोलघर के नजदीक रहते थे । सेक्रेटरियट में काम करते थे ?"

"जी हाँ, आपको कैसे मालूम ?'—वह आश्चर्य चकित हो बोले ।

'मैं उनका पड़ोसी था, मेरा नाम महेश प्रसाद है ।"

'अच्छा, आपसे मिल कर बहुत खुशी हुई !"

"हाँ," उसने उर्मिला की ओर देखा, वह जाने कैसी दृष्टि से महेश की ओर देख रही थी !—"उर्मिला की हालत देख मुझे बहुत दुख हुआ । खैर, जल्दी आराम हो जायगी ।"



डाक्टर चले गये, पतिदेव उनके पीछे-पीछे गये।

उर्मिला की आँखों से आँसू चल रहे थे। मेरे बालपने की जोड़ी कुछ बोला तक नही !......मर जाय तो अच्छा !.......

महेश ने अनुभव किया मानो उसका एक बहुत बड़ा सुन्दर सपना नष्ट हो गया। जिस स्मृति के आधार पर वह अबतक एकाकी जीवन व्यतीत कर रहा था मानो वह आधार ही नष्ट हो गया। अब तो उर्मिला की याद आने पर उसका रुग्ण और कुरूप चेहरा आँखों के सामने नाच उठता।

करीब पन्द्रह दिनों बाद अखबारों में महेश की ओर से विज्ञापन निकला "सुन्दर, सुशील कन्या की आवश्यकता है।................."

——o——

सफल कौन ?

नरेश ने अखबार के पहले पृष्ठ में देखा कि कमला प्रसाद की मृत्यु की खबर बड़े-बड़े अक्षरों में निकली थी। साथ में शहर, प्रान्त और देश के बड़े-बड़े लोगों के शोक उद्‌गार भी निकले थे।

नरेश अभी श्मशान घाट से दाह-क्रिया कर लौटा था। अखबार के पृष्ठों पर उसे मालूम हुआ मानो वह कमला प्रसाद के जीवन की कई घटनाओं का चित्र एक-एक कर देख रहा है। कई घटनायों से वह घनिष्ट रूप से संबंधित था।

नरेश, कमला प्रसाद के बचपन का साथी था। दोनों साथ-साथ पढ़ते थे। उसके सामने उसने वे काम किये थे, जो उसके नाम को उठाने में समर्थ हुए और उसके सामने ही आज उसका शरीर दुनिया के वास्ते खो गया।

जीवन की कुछ घड़ियाँ नरेश को विशेष रूप सेयाद आने लगी और ऐसा लगा कि वे उसके जीवन की सबसे अधिक महत्व की घड़ियाँ थी।

उसे याद आया जब उसने कमला प्रसाद को पहली बार देखा था। क्लास के एक कोने में एक दुबली-पतली आकृति उसने देखी। उसके चेहरे पर कुछ ऐसा न था कि कोई ध्यान से उसकी ओर देखे।

वैसे कमला से जब नरेश ने बातें करनी आरम्भ कीं तो उसका एकमात्र घनिष्ट मित्र होने में देर न लगी। कमला प्रसाद का व्यवहार



श्मशान घाट से दाहक्रिया कर लौटा था। अखबार
मालूम हुआ मानो वह कमला प्रसाद के जीवन की कई
त्र एक-एक कर देख रहा है।

ऐसा था कि मानो उसे किसी चीज से दिलचस्पी नहीं। विद्यार्थी समाज का सबसे अधिक लोकप्रिय नरेश और अनेक कामों से सम्बन्धित रहता था, पर उसे कमला प्रसाद का सहयोग इच्छा रखने पर भी कभी न मिला।

नरेश को वह दिन भी याद आया जब दोनों की शिक्षा समाप्त हुई थी। परीक्षा में उसने कोई विशेष प्रतिभा का परिचय न दिया था। कमला प्रसाद को एक नौकरी मिल रही थी। उसके पिता पुराने सरकारी अफसर थे और उनका इतना प्रभाव था कि अपने पुत्र को उस विभाग में नौकरी दिला सकें। नौकरी मिल जाने की खुशी में दोनों मित्रों की दावत थी। बात ही बात में हँसता हुआ कमला प्रसाद गम्भीर होकर बोला—ऐसा मालूम होता है कि मैं नौकरी अधिक दिनों तक न कर सकूँगा।'

"क्यों" नरेश ने पूछा था।

'मेरा मन दूसरी ओर झुकता है।"

नरेश ने चाहा कि इस विषय में और बातें करे कि कई सम्बन्धियों का दल कमरे में घुस आया।

कुछ दिनों के बाद चलता-पुर्जा नरेश आई. सी. एस. की परीक्षा में सफल हो ट्रेनिंग के लिये चला गया।

कुछ दिनों तक उसे कमला प्रसाद के खत मिलते रहे थे। वह लिखता था कि उसे सुख है, पैसे की तंगी नहीं, आनन्द से दिन कटते हैं। शादी हो चुकी थी, एक-दो बच्चे हैं, सभी उससे खुश हैं।

अचानक उसके खत आने बन्द हो गये। नरेश ने एक-दो खत भेजे फिर वह अपने कामों में उसे भूल गया। ट्रेनिंग सफलतापूर्वक समाप्त कर वह पटना लौटा तो उसे कमला प्रसाद की याद आई। मालूम हुआ कि उसने नौकरी छोड़ दी, खाना भी कठिनाई से मिलता

है वह शहर की एक गन्दी गली म अपन परिवार सहित रहता है, साथ ही उसने यह भी सुना कि प्रान्त में उसका नाम है, प्रान्त के बाहर भी उसकी इज्जत है। वह एक अखबार निकाले हुए है। पर भारत की अशिक्षा, देश की गरीबी या अमीरों की संकीर्ण हृदयता अथवा पढ़े-लिखों का इस ओर से वैराग्य कहिए अखबार निकाल कर वह वैसा निश्चिन्त न रह सका, जैसा नौकरी के समय था। उस समय उसकी आत्मा दुःखी थी, इस समय उसका शरीर दुखी था। ये बातें नरेश ने भेंट होने पर उसने कही थी। उस समय उसके चेहरे पर जो चमक दीख रही थी, वह नरेश को साफ याद आ गई। वह प्रभावित हो गया था। पर कमला प्रसाद के हृदय में एक शक्ति थी जो उसे त्याग करने मे समर्थ बनाती थी।

उसके बाद कई दस वर्ष बीत गये थे, दोनों मित्रों मे भेंट न हुई। नरेश सरकार का प्रियपात्र, शहर का एक उच्च अफसर था और कमला प्रसाद था सरकार की आँखों में खटकने वाला एक साधारण व्यक्ति। नरेश और कमला प्रसाद की मित्रता का सूत्र इतना कमजोर न था, दोनों एक दूसरे से दिलचस्पी लेते थे। पर उनके सिद्धान्त भिन्न थे। पर तो भी मित्र के रूप में वे खुल कर मिलते पर यह नरेश के लिये घातक था, इसे कमला प्रसाद समझता था।

एक दिन का नकशा नरेश के सामने खिच आया। उसने कमला प्रसाद को देखा था पटने के नागरिक एक बहुत बड़े जुलूस के साथ उसे उस रास्ते से लिये जा रहे थे। उसकी जयध्वनि हो रही थी। वह शान्त बैठा था, जनता की जागृति पर उसे सन्तोष था, उसकी क्षीण काया फड़क उठती थी।

आज उसे जेल से छोड़ा गया। उसने अपने लेखो से, सम्पादकीय टिप्पणियों से, कहानियों और उपन्यासों से जनता को भड़काया था।

अपने निबन्धों से लोगों की आँखें खोली थीं। अपने त्याग मे एक नया आदर्श रखा था । उसने लोगों को सच्चा मार्ग बताया था, लोगों की गलतफहमी दूर की थी। वह आजादी की लड़ाई का बहादुर सिपाही बन गया था।

और आज वह जेल से लौटा था, फूलों से लदा कमला प्रसाद की सन्तुष्ट मुद्रा, मालूम पड़ा नरेश अभी देख रहा है।

उसने अपने देश की सेवा की, साहित्य की सेवा की । उसे यश मिला। उसके सम्बन्धी उस पर गर्व करते थे, पर रुपयों की तङ्गी होने के कारण कभी-कभी वे संयम खो बैठते थे । जब पिता की मत्यु हुई थी, तब देश भर से लोगों ने सहानुभूति पूर्ण पत्र और तार भेजे थे। नरेश ने भी चुपके से नौकर के हाथ एक चिट लिख भेजा। कमला प्रसाद ने यह लिखा था। 'पिता मर गये। यद्यपि वे अपने को दबाये रहते थे, मेरे कार्य के महत्ता समझते थे। पर तो भी वे असन्तुष्ट रहे। ये तार के ढेर मेरे दुख को कैसे दूर सकते हैं। तुमने मुझे लिखा, धन्यवाद।'

नरेश को खुशी हुई थी कि कमला प्रसाद ने उसके पास इतना लिख भेजा। वह जानता था कि दूसरों के पास उसने ऐसा उत्तर न भेजा होगा। इतने दिनों तक भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अलग रहते हुए, उसे घनिष्ट समझता था, यह देख खुशी हुई। पर उसने कमला प्रसाद के दिल की वेदना को भी महसूस किया। अर्थाभाव, छोटी-छोटी बातों मे मासूम बच्चों को निराश कर देना पिता के दिल को तकलीफ देती होगी। कमला के यश और सम्मान मे कभी उनकी छाती फूल उठती होगी। पर वे इतना ऊँचा न उठे थे, उनका हृदय कभी-कभी कसक उठता होगा, कुछ अभाव देखते होंगे, जिसे उनके शब्द नहीं, उनके मुख रे प्रकट करता होगा। नरेश उस दिन सारी रात यही सोचता रहा।

कमला प्रसाद राजनीति के क्षेत्र में इसलिए आया था कि उसकी साहित्यिक भावनाओं ने उसे प्रेरित किया था। पीछे वह पूरा साहि-

त्यिक बन गया। उसकी रचनाओं ने, उसकी मातृभाषा हिन्दी का, उसकी मातृभूमि भारत का नाम ऊँचा किया। पर कमला प्रसाद कभी सुखी न रहा। मानो इन कामों के करने के लिये, उसे सुख का वलिदान करना जरूरी था। हाँ, उसकी आत्मा प्रसन्न थी। पर उसे सन्तोष था। साहित्यिक जागृति का अभाव उसे पीड़ित करती थी। उसने ये बातें लोगों पर प्रकट की थीं।

फिर भी उसने कुछ किया। नरेश ने सोचा, वह दुःख सहता रहा, पर कुछ काम कर गया। नरेश ने अपने जीवन की ओर दृष्टि डाली। उसने शिक्षा प्राप्त की, नौकरी मिली, कुछ वर्षों बाद पेन्शन मिलेगी, फिर वह भी मर जायगा, जैसे कमला प्रसाद मरा था। लोग कहते हैं, नरेश का जीवन सफल रहा, पर कमला प्रसाद का जीवन? वह संघर्ष में बीता। उसने अपने लिये नहीं, अपनी भाषा के लिये कुछ किया। पर क्या उसका जीवन सफल नहीं? अगर सफल है तो नरेश का जीवन अधिक सफल है या कमला प्रसाद का?

नरेश की आँखों से दो बूँद आँसू नीचे अखबार पर टपक पड़े।

अपराधी

रूप का सौदा जिस गली में होता है उस गली से नवल अनायास ही गुजर रहा था। आज उसकी तबियत बहुत भिन्नाई हुई थी। काम और दफ्तर के कोलाहल और उत्तरदायित्व के भार से मुक्त हो दशहरे की छुट्टियाँ बिताने के लिये वह घर आया था। पर यहाँ आते ही माता-पिता उससे उलझ पड़े। और सदा की भाँति उसने कह दिया कि अभी वह शादी कदापि नहीं करेगा। कारण पूछने पर उसने साफ कह दिया कि शादी करने की जब मर्जी होगी तो वह खुद कह देगा। किसी को इसके लिए चिन्ता करने की जरूरत नहीं। माता-पिता कुढ़ कर चुप हो गये।

यूँ बात तो जहाँ की तहाँ रह गई लेकिन इस घटना ने नवल को शादी के प्रश्न पर सोचने को मजबूर कर दिया। आखिर ऐसी कौन सी बात है जो शादी के मार्ग में रोडा बन कर अटक जाती है। आज-कल के कठिन जमाने में इस सवाल का आर्थिक पहलू भी बहुत महत्त्व-पूर्ण है। "लेकिन नहीं" नवल सोच रहा था, "यह सवाल मेरे लिये उतना दुरुह नहीं। लेकिन क्यों नहीं मुझे कोई लड़की रुचती ? मैं क्या चाहता हूँ ? मैं कैसी लड़की चाहता हूँ ?"

सहसा नवल की आँखों के सामने कंचन की तसवीर नाच गई। महसूस किया कि जान या अनजान में वह जिस लड़की को देखता है

उसकी तुलना कंचन से करता है। ताज्जुब यह है कि कंचन के मुकाबले में वह सभी को तुच्छ पाता है और फलस्वरूप उसका मन विरक्ति से भर जाता है। उसका मन उदास हो जाता है और मन ही मन वह सोचता है, "उफ् कंचन इतनी अच्छी है।"

पाँच साल पहले के दृश्य नवल को याद आने लगे। उस वक्त वह कौलेज में पढ़ता था। गर्मी की लम्बी छुट्टियाँ बिताने के लिये वह अपने चाचा के यहाँ आया था। चाचा एक सरकारी अफसर थे और उस वक्त राँची में थे। राँची में गर्मी के दिन बिताने का लोभ न संवरण कर सकने के कारण नवल राँची पहुँच गया था।

जिस दिन नवल राँची पहुँचा उसी दिन की बात थी। वह बाहर बरामदे में बैठा एक पत्रिका के पन्ने उलट रहा था। सहसा कुछ आहट पा उसकी नजर पड़ोस के मकान के हाते में गई। एक किशोरी माली को कुछ हिदायतें दे रही थी। नवल की आँखें जैसे चकाचौंध हो गईं। उस किशोरी के रग-रग में चुस्ती और फुरती समायी हुई थी। मानो उसकी बोटी-बोटी फड़क रही है। दुबला-पतला छरहरा पर माँसल शरीर, कंचन की तरह दमकता हुआ तेज रंग, काले घने लम्बे बाल, बड़ी-बड़ी मदभरी आँखें, नवल ने मानो कोई अद्भुत चीज देख ली है। किशोरी ने एक उड़ती नजर से नवल की ओर देखा और फिर उसकी उपस्थिति का तनिक भी खयाल नहीं करती हुई पहले की तरह पौधों को देखती रही और हिदायतें देती रही। नवल मंत्रमुग्ध-सा हो गया।

उसके बाद से नवल उसे सिर्फ भर नजर देखने के लिये व्याकुल रहता। घूमना टहलना छोड़, घंटों वह बाहर इसी इन्तजार में बैठा रहता कि कंचन जब बाहर निकलेगी तो वह उसे देखेगा। और जब कभी वह सामने आती तो बेहया की तरह घूर-घूर कर उसकी ओर देखता रहता। वह सोचता, ऐसा कर वह अपने को कंचन और दूसरों

की नजर में गिरा रहा है क्योंकि स्त्रियाँ घूरी जाना भले ही पसन्द करें घूरने वालों को पसन्द नहीं करतीं। बहुधा वह मन ही मन निश्चय करता कि अब वह कंचन के सम्मुख आँखें भी नहीं उठायगा। पर कंचन को सामने पा उसका सारा निश्चय काफूर की तरह उड़ जाता और उसकी आँखें उसके चेहरे पर जम जाती।

स्वभाव से शर्मीला होने के कारण नवल ने कभी कंचन से घनिष्टता बढ़ाने का या उससे-बातें करने का साहस नहीं किया और इस प्रकार उसकी स्पष्ट और सुन्दर मूर्त्ति अपनी आँखों में बसा वह छुट्टियाँ बिता राँची से विदा हुआ। तब से वह मूर्त्ति अभी तक उसकी आँखों में बसी है।

उस घटना के दो वर्ष बाद ही अपनी शिक्षा समाप्त कर नवल एक अच्छे पद पर बहाल हो गया था। चूंकि वह एक संपन्न परिवार का था और स्वयं भी आत्मनिर्भर था उसके पास शादी के लिये बहुत ही आकर्षक प्रस्ताव आने लगे थे। लेकिन कोई भी प्रस्ताव नवल को आकर्षित करने में समर्थ नही था।

नवल के चाचा की बदली साल भर बाद ही राँची से हो गई थी। लेकिन पड़ोसी परिवार से उनका संपर्क बना हुआ था। एक दिन वह अपने चचेरे भाई सुरेश से अनायास ही पड़ोस के वकील साहब के बारे मे पूछ बैठा।

"और उनकी लड़की का क्या हुआ ? क्या नाम था उसका ?" मस्तिष्क पर जोर देने का नाट्य-सा करता हुआ नवल बोला, "कान्ति या शान्ति......"

"कौन कंचन ?" सुरेश बीच ही में बोल उठा।

"हाँ हाँ, ठीक कंचन" नवल उदासीन भाव से बोला, "वकील साहब उसकी शादी ठीक कर सके या नही ?"

"वह तो मर गई ।"

"अच्छा" इस अप्रत्याशित खबर से मर्माहत हो नवल बोला, "कैसे ?"

"वे लोग हरिहर क्षेत्र के मेले में गये थे" सुरेश ने बतलाया, "हैजा बहुत जोरों का फैला । बेचारी कंचन उसी की शिकार बन गई ।"

"कब की बात है ?"

"कुछ महीना पहले । पिछले मेला की बात है । मैं कालेज से सर्टिफिकेट लेने राँची गया, तब मालूम हुआ ।"

नवल ज्यादा नहीं पूछ सका । उसे ऐसा लग रहा था मानो उसका कोई बड़ा महल क्षण भर में टूट कर चकनाचूर हो गया । कल्पना का महल इतना आलीशान रूप ले चुका था सो नवल को नहीं मालूम था । उसे यह भी नहीं मालूम था कि कल्पना के महल का ढहना वास्तविक महल के ढहने से ज्यादा दुखदायी होता है ।

उस घटना के भी तीन वर्ष गुजर गये । लेकिन अभी भी शादी का प्रश्न उठने पर नवल की आँखों के सामने कंचन की मूर्ति खड़ी हो जाती है । वह ईश्वर को कोसता है, "इतनी अच्छी, इतनी सुन्दर कंचन को तुमने क्यों मार दिया भगवान् । तुम्हारी सृजन-कला का वह एक सुन्दर नमूना थी; उसे तो दुनिया के सामने रहना चाहिये था । दुनिया उसे देख मुग्ध होती रहती" कंचन की याद उसे घंटों उलझाये रहती और वह अपने आप में खो जाता ।

.. ..

शादी की बात को लेकर आज माता-पिता से जोरदार बहस हो गई थी । नवल महसूस कर रहा था कि उसकी रूक्षतापूर्ण बातों ने माता-पिता के हृदय पर ठेस पहुँचाई थी । यह विचार उसके मन को दुखी कर रहा था । वह सोच रहा था कि दुनिया की सभी संक्रामक बीमारियों

की तरह दुख भी संक्रामक है। दुखी मनुष्य का संपर्क ही मनुष्य को दुखी कर देता है।

अपनी तबियत को बहलाने के लिये नवल घूमने निकल गया, शहर के इस गुलजार हिस्से की ओर आने का नवल का कोई इरादा नहीं था लेकिन उस स्थान के कोलाहल से आकर्षित हो वह बढ़ता चला गया।

सहसा अपने कंधे पर उसे किसी के हाथ का स्पर्श महसूस हुआ। पीछे मुड़ कर देखा तो एक अपरिचित मनुष्य था। धीमे स्वर में वह बोला, "जरा मेरे साथ चलियेगा ?"

नवल की भौंहों में बल पड़े, "कहाँ ?"

"चलिये, मैं रास्ता बतलाता हूँ" नवल का हाथ पकड़ वह व्यक्ति बहुत आत्मीयता से बोला।

"मैं क्यों चलूँगा" हाथ झटकता हुआ नवल बोला, "कहीं जाने की जरूरत नहीं है।"

नवल की आकस्मिक बेरुखी से वह व्यक्ति कुछ विस्मित दीख पड़ा, फिर भीख माँगता, सा बोला, "सरकार पाँच मिनट के लिये चलिये। इस गरीब पर बड़ी इनायत होगी।"

विस्मयचकित नवल बोला, "आखिर तुम्हारा मतलब क्या है ?"

उस व्यक्ति ने हाथ जोड़ कर कहा, "हमारी बाई जी ने अभी आपको आते देखा तो बोली यह हमारे घर के अपने आदमी हैं। किसी तरह इन्हें पाँच मिनट के लिये भी बुला लाओ।"

"चल हट। तुम बहुत चालबाज मालूम पड़ता है।" नवल असंतुष्ट हो बोला, "मेरा कोई आदमी यहाँ नहीं रह सकता।"

"हुजूर की बात" दाँत से जीभ काटता हुआ वह व्यक्ति बोला, "आप लोग बड़े आदमी ठहरे। शहर में बहुत से जान-पहचान के लोग रहते हैं। पाँच मिनट के लिये तकलीफ की जाये।"

कौतूहल के भाव ने नवल को घर दबाया और वह उस व्यक्ति के साथ चल पड़ा ।

.. ..

जिस सजे सजाये कमरे में उसे लाया गया उसमें एक सजी सजायी युवती पलग पर बैठी थी । नवल को देखते ही वह उठ खड़ी हुई और अपने पैर के नाखून की ओर देखती हुई बोली, "बैठिये ।"

नवल ने एक उड़ती हुई निगाह से उसकी ओर देखा और पलंग पर बैठ गया । इस सूरत को उसने कहाँ देखा है यह जानने के लिये उसने उस लड़की की ओर ध्यान से देखना चाहा पर इस अनजान जगह पर एक अनजान युवती को भर नजर देखना नवल को मुश्किल हो रहा था ।

जब कुछ क्षण गुजर गये और शान्ति खलने लगी तो नवल ने कुछ बोलना जरूरी समझा, रहस्यमय वातावरण की शान्ति को तोड़ता हुआ नवल बोला, "आप खड़ी क्यो है ?" और इतना कह उसने फिर एक दफा युवती को देखने की कोशिश की ।

युवती के ओठ कुछ हिले, फिर वह बुदबुदाती-सी बोली, "मै ठीक हूँ ।"

"नही नहीं" नवल कुछ बेचैन सा अनुभव करता हुआ बोला, "तो मै जाता हूँ ।" और इतना कह वह उठने का उपक्रम करने लगा ।

"अच्छा मै बैठती हूँ" इतना कह वह पलंग के एक कोने पर बैठ गई ।

"आपने मुझे गलती से तो नही बुलवा लिया" नवल बोला, "मैं तो यहाँ पहले नही आया था ।"

"आप नवल बाबू है ?" वह धीमे से बोली ।

"हाँ" नवल विस्मित हो बोला, "आपने कैसे जाना ?"

"आप मुझे नही पहचानते ?"

"मैं" नवल ने एक दफा उसे उडती नजर से फिर देखा, "मैं.... कहाँ आपको देखा था.....किसी महफिल में.....जगदीश की शादी में......नहीं नही.....मुझे ठीक याद नहीं पड़ता।"

"आपको मेरी बिल्कुल याद नहीं" युवती की आवाज भर्रा गई, "मर्द की याद ऐसी ही होती है।"

"पर आप गलती तो नहीं कर रही हैं?" नवल ताज्जुब में पड़ा बोला। पर नवल के विस्मय का ठिकाना नहीं रहा जब उसने युवती के बिलखने की आवाज सुनी। नजर उठाने पर उसने देखा कि दोनो हाथो में अपना मुँह छिपाये मुशहरी के डंटे पर सर टेके वह बहुत ही करुणात्मक ढंग से सुबक-सुबक कर रो रही है, मानो उसकी छाती किसी गहरी वेदना के कारण फटी जा रही हो।

ऐसी परिस्थिति में अपने को पा नवल हैरत में था। पर एक युवती को चाहे, वह अनजान ही क्यों न हो, इस तरह बिलखते देख वह निष्क्रिय न रह सका। उसने पूछा—"आप इस तरह क्यों रो रही है ?"

संवेदना के शब्द सुन युवती और फूट पडी। बिलखती हुई बोली, "मै बहुत दुखी हूँ।"

नवल कुछ क्षण चुप बैठा रहा फिर बोला, "तो आप मुझ से क्या चाहती हैं ? क्या आपको रुपये चाहिये ? लीजिये इस वक्त मेरे पास जो है आपको दे देता हूँ।" इतना वह उसने अपना पर्स उसके हाथ में थमा दिया, और उठ कर खड़ा हो गया।

युवती ने अपनी आँखें उठा नवल की ओर देखा। उन आँखों में करुणा का सागर उमड़ रहा था। नवल उन आँखों से आँखें न मिला सका। नारी का दयनीय रूप देखने का यह उसका पहला अवसर था। वह बोली, "मुझे रुपयों का दुःख नहीं है। रुपये तो मेरे शरीर से पैदा होते है। मै इस नरक से ऊब गई हूँ नवल, इस नरक से ऊब गई हूँ।"

"क्यों आई इस नरक में आप ?"

"मेरे माता-पिता ने मुझे छोड़ दिया था" युवती बोली, "मुझे घर से निकाल दिया। अनजान जगह में अकेले बेसहारा छोड़ दिया। मेरे कारण उनकी इज्जत खराब हो रही थी। मैं पतित हो गई थी। मैंने अपने पड़ोस के युवक से प्रेम कर लिया था। उस युवक ने प्रेम का आनन्द तो उठाया लेकिन उसके फलस्वरूप जब मुझे गर्भ रह गया तो इस जिम्मेदारी को लेने से साफ इनकार कर गया और कायर की तरह मुझे छोड़ चला गया। माता-पिता के कहने के मुताबिक मैंने जब गर्भ नष्ट नही किया तो उन्होंने मुझे बुरी तरह से फटकारा और आँखों से दूर हट जाने को कहा। मैं आवेश में आकर घर से निकल गई और गुंडों के फेरे में पड़ गयी। नतीजा यह हुआ कि मुझे मरी हुई संतान पैदा हुई और मैं इस बाजार में पहुँचा दी गई। मैंने अपने प्रेमी को कई खत लिखा, उससे प्रार्थना की कि मुझे इस नरक से निकाल सदाचार की जिन्दगी बिताने का मौका दे। पहले तो उसने चिट्ठी का जवाब नहीं दिया, फिर शायद ऊब कर मुझे धमकी दी कि "मैं उसे पत्र नही लिखूं।"

"और शायद आपने समझ लिया कि मैं ही आपका प्रेमी युवक हूँ। शायद उसका चेहरा मुझ से मिलता होगा। क्या उसका भी नाम नवल था ?" समस्या का समाधान-सा पाता हुआ नवल बोला।

युवती ने आँखें उठा फिर नवल की ओर देखा। कुछ बोली नही।

"मैं वह नवल नही हूँ" नवल कहता गया, "मैने कभी आपके साथ कोई गुस्ताखी नहीं की थी।"

युवती अब भी चुपचाप उसकी ओर देखती रही। मानो समझ नही पा रही हो कि वह क्या कहे।



युवती का सामीप्य नवल को मादक लग रहा था। उसकी बातों से उसके मन में करुणा तो जरूर उत्पन्न हो रही थी पर साथ ही उत्तेजना के वश वह अपनी सुध-बुध खोता जा रहा था। सहसा एक झोंके से मानो उसका नशा टूट गया हो और वह हड़बड़ा कर बोला, "तो मुझे इजाजत दीजिये। मैं चलूँगा।"

युवती ने उसका हाथ पकड़ लिया और बोली, "क्या आपको मुझ से नफरत है ?"

"नहीं तो" नवल भौंचक हो बोला।

"आपको मेरा शरीर काँटा-सा चुभता है ? आप क्यों इस कदर मुझ से कतरा रहे हैं। आपको देख मुझे बहुत खुशी हुई थी। मैंने बहुत अरमान से आपको बुलवाया था। सोचा था आप मुझे मेरे जख्म का मलहम देंगे। पर आपका व्यवहार शायद जख्म को बुरी तरह कुदेरने का काम कर रहा है। यह मेरी रही सही खुशी को भी नष्ट कर देगी। अभी मैं कम से कम अपने रूप पर भरोसा कर यहाँ बैठी हूँ। आपके व्यवहार के कारण मैं इस नरक में पड़ी। अब आप ही के व्यवहार के कारण शायद मैं इस नरक में भी अपना आत्मविश्वास और भरोसा खो कीड़े की तरह बिलबिलाती रहूँगी।" और इतना कह युवती फिर रोने लगी।

नवल सहम कर बोला, "मैं वह नवल नहीं हूँ।"

"आप ही वह नवल हैं" युवती उत्तेजित हो बोली, "आप सुरेश के चचेरे भाई हैं।"

"हाँ।"

"आप ही ने मुझे इस हालत में पहुँचाया।"

"मैंने" ? नवल घबड़ा कर बोला, "आप क्या कहती हैं ?"

"मैं ठीक कहती हूँ।" आवेश से काँपती हुई युवती बोली।

"आपको गलतफहमी हो गई है। मैंने तो आपको कभी देखा भी नहीं है।"

"आपने मुझे खूब देखा है" युवती दृढ़ स्वर में बोली, "या तो आप बन रहे हैं या झूठ बोल रहे हैं।"

यदि नवल सचमुच गुंडा या आवारा रहता तो शायद दोषी रहते हुए भी वह इस युवती को अभी खूब फटकारता और उसे मक्कार, चालबाज, आदि विशेषणों से विभूषित करता। लेकिन वह एक सदाचारी युवक था जिसका आज तक किसी युवती से सपर्क तक नहीं हुआ था। फिर भी इस भीषण आरोप के भार से मानो वह दबा जा रहा था। उसका चेहरा सफेद हो गया था और उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड रही थी मानो उसे फाँसी की सजा सुना दी गई हो।

"मैं इस हालत में पहुँच गई इसके लिये सबसे बड़े जिम्मेदार आप है। अगर आप....." सहसा युवती की नजर नवल के चेहरे पर पडी और वह चुप हो गई। नवल बुत-सा खड़ा शून्य दृष्टि से देख रहा था मानो वह कुछ सुन समझ नही रहा हो।

युवती कुछ क्षण उसकी ओर देखती रही। फिर बोली, "नवल बाबू, आप कितने अच्छे हैं। आप मुझे यहाँ से ले चलिये। मैं आपसे विनती करती हूँ, आपके चरण पकड़ती हूँ।"

हवा का झोंका आने से वृक्ष जैसे थोड़ा हिल जाता है वैसे ही युवती के स्पर्श से नवल थोड़ा हिल गया फिर करुण स्वर में बोला, "आपकी बातें मैं बिल्कुल नहीं समझ सका। सच कहता हूँ, मैंने कभी वैसा गुनाह नही किया है। आप मेरा विश्वास करें।"

"आप अभी भी ठीक वैसे ही भोले हैं। पूरा गोबरगणेश।" इतना कहते कहते युवती के वेदनामिश्रित मुख पर भी मुस्कान की एक रेखा खिच गई, "मैं आप को बताऊँ।" एकाएक ऐसा हुआ था कि मैं महसूस

करने लगी कि मैं बहुत सुन्दर हूँ और लोग मुझे देख कर मुग्ध हुआ करते हैं। इस भाव के आने से मुझ में अपने सौंदर्य को सजाने सँवारने की स्वाभाविक प्रवृत्ति को और प्रोत्साहन मिला। फिर लोग किस हद तक इस सौंदर्य से आकर्षित और प्रभावित होते हैं इसकी जाँच करने की इच्छा जाग्रत हुई। लेकिन आप खड़े क्यों हैं? आइये बैठिये। इत्मीनान से बैठिये। अभी जल्दी क्या है। अभी तो सात ही बजे हैं।" और इतना कह युवती नवल का हाथ पकड़ एक तरह से घसीटती हुई बिस्तर पर ले गई और तकिये के सहारे उसे बिठा दिया। फिर बैठती हुई बोली, "आप को मेरी बातें सुनने में एतराज तो नहीं है?"

"नहीं" नवल ने संक्षिप्त उत्तर दिया। अब उसने परिस्थितियों को आत्मसमर्पण कर दिया था।

"मेरी बड़ी बहनें पर्दा करती थीं। पिताजी उसे घर से बाहर निकलने नहीं देते थे। स्कूल के बाद उनका पढ़ना बन्द करवा दिया था। मैं उन पर हँसती थी। जिद कर मैंने कौलेज में नाम लिखवा लिया था। आज मेरी तीनों बड़ी बहनें अपने-अपने प्रतिष्ठित और संपन्न पतियों के साथ सम्मान की जिन्दगी बसर कर रही हैं। सुना है मेरी छोटी बहन की भी शादी होनेवाली है। लेकिन मेरी किस्मत में यह बदा था। यहाँ मुझे अपने शरीर का सौदा करना पड़ता है। कभी-कभी इच्छा होती है आत्महत्या कर लूँ। सोचती हूँ मेरी बहनें कितनी सुखी हैं। और वह सुख मेरे लिये भी सुलभ था। मैं अपने रूप के घमंड में पगली हो गई थी। इसका प्रदर्शन करने को आतुर रहती थी। इससे मुझे आत्मसंतोष मिलता था। यह सब मेरा लड़कपन था। मैं नहीं जानती थी कि यह लड़कपन मुझे ले डूबेगा। हमारे पड़ोस में एक युवक विद्यार्थी रहता था। वह मुझे घूर घूर कर देखा करता था। इससे मैं बहुत क्षुब्ध रहती थी। लेकिन जब भी मैं बाहर निकलती तो यह जानने के लिये

व्याकुल रहती कि वह मुझे घूर रहा है या नहीं। शायद वह युवक चतुर था और मेरी मानसिक स्थिति समझ रहा था। वह मुझे देख मुसकराया करता। उसके बाद मेरे भाइयों से या पिताजी से मिलने के बहाने मेरे यहां आने लगा। और जब कभी मुझ से उसका सामना होता मुझ से कुछ न कुछ जरूर बोल बैठता।"

"क्या वह युवक ठीक मुझ जैसा था ?" नवल की उत्सुकता फिर उभरी।

"आप सुनिये भी तो" नवल की ओर देखती हुई वह बोली, "उस दिन मेरे कौलेज में ड्रामा था। मैं दो बजे कौलेज गई थी और ११ बजे तक लौटने को थी। लेकिन ४ बजे के करीब कौलेज में मेरी तबियत उचट गई और मैं डेरा लौट आई। रास्ते में मूसलाधार वृष्टि होने लगी और मैं रिक्शे पर भी भींग गई। मकान लौटी तो अजीब फेरे में पड़ी। घर पर कोई नहीं था और यहाँ तक कि दरवाजे पर ताला लगा था। भींगे कपड़ों में मुझे सर्दी लग रही थी। सहसा सामने देखा तो वही पड़ोस के युवक खड़े थे। मुझ से पूछा, 'आप तो बिल्कुल भीग गई ?"

"जाने ये लोग कहाँ चले गये ?"

"हरीश बाबू के यहाँ गये हैं। आज उनकी लड़की की शादी है। आठ नौ बजे लौटेंगे। आप छूट कैसे गई।"

"मैं ड्रामा से १०, ११ बजे तक लौटने वाली थी। खैर, मैं भी वहीं जाती हूँ।"

"कपड़े बदल कर जाइये" उसने गहरी आत्मीयता के साथ कहा, "वरना सर्दी लग जायगी।"

"नहीं लगेगी सर्दी" मैंने कहा, "अब इस वक्त में कपड़े कहाँ से लाऊँ ?"

"मेरे यहाँ चलिये और कपड़े बदल लीजिये ।" और इतना कह बिना मेरे जवाब का इन्तजार किये मेरा हाथ पकड़ वह मुझे अपने घर की ओर ले चला । अभी भी मूसलाधार पानी बरस रहा था ।

अपने मकान के अन्दर आ ऊषा के कमरे की ओर इशारा करता हुआ वह बोला, "जाइये, कपड़े बदल लीजिये ।"

उधर मैं कमरे में गई और इधर मकान का दरवाजा बन्द करने की आवाज कान में पड़ी । मैं चौंक पड़ी और सहसा मैंने महसूस किया कि मकान खाली है । तभी उसने कमरे में प्रवेश किया । मैंने उससे पूछा, "ऊषा कहाँ है ?"

"यहाँ कोई नहीं है । सभी हरीश बाबू के यहाँ गये है ।"

"फिर आप मुझे यहाँ क्यों बुला लाये ?" मैं तैश में ठंढ से काँपती हुई बोली । वृष्टि का वेग इस वक्त और ज्यादा बढ़ गया था ।

मैंने ताज्जुब से देखा कि कपड़े भींगे न रहने पर भी वह काँप रहा था और उसका चेहरा तमतमाया हुआ था । बड़ी मुश्किल से वह बोल सका, "इस मौसिम में तुम्हें न बुलाता तो किसे बुलाता" और इतना कह वह अचानक मुझ से लिपट गया ।

उसका बंधन मुझे कुचले जा रहा था और चुम्बन के बौछार से उसने मुझे बदहवास-सा कर दिया था । मैं चीख पड़ी, "क्या कर रहे है ? हटिये ।"

"उसने मुझे मजबूर कर दिया था ।" इतना कह वह चुप हो गई । फिर कुछ क्षण ठहर कर बोली, "लेकिन यह अनुभव मुझे बहुत महँगा पड़ा ।"

"मेरा विश्वास कीजिये बाई जी" नवल फिर बोला, "मैंने आज तक कभी किसी लड़की के साथ ऐसी हरकत नहीं की है ।"

इस संबोधन से युवती चिहुँक पड़ी, बोली, "मैं कंचन हूँ ।"

नवल को जैसे बिजली का जबर्दस्त धक्का लगा हो। दबाया हुआ स्प्रिंग जिस तरह दबाब हटते ही उठ जाता है उसी तरह वह वेग से उठ बैठा, "ऐं" वह कंचन को घूर कर देखता हुआ बोला, "अच्छा", सच !!'

"कभी आप घंटों मुझे घूरा करते थे ?"

"हाँ !"

"आपके उस घूरने की क्रिया ने ही मेरा दिमाग खराब कर दिया था। मैं अपने को न मालूम क्या समझने लगी। नतीजा क्या हुआ, वह मै आपको बता चुकी हूँ। इसीसे कहती हूँ, मुझे इस हालत में पहुँचाने में सबसे बड़े गुनाहगार आप हैं। काश, मैं जानती रहती कि सभी घूरनेवाले आप ही जैसे निर्दोष नही होते।"

नवल का चेहरा काला पड़ गया था मानो किसी प्रियजन की मृत्यु का समाचार सुना दिया गया हो। अपने ललाट से पसीने की बूँदें पोंछता हुआ बोला, "तुम मरी नही थी ?"

"नहीं, मैंने बताया तो...."

"म तुम्हें प्यार करता रहा था। तुम्हारी याद कभी नहीं भूल सका था। मैंने शादी नहीं की, क्योंकि मैं तुम्हें चाहता था।"

"मैं जानती थी, समझती थी। इसी विश्वास से मैंने तुम्हें देखते ही बुलाया।"

"पर यह सब क्या हो गया" गहरा निःश्वास लेता हुआ नवल बोला, "हे ईश्वर, यह तुमने क्या किया और क्यों किया ?" उसने अपने ललाट का पसीना फिर पोंछा।

"परीशान मत होओ" कंचन बोली, "आखिर उसी ईश्वर ने तुम्हें मुझ से मिला भी तो दिया। क्या करते हो आजकल ?"

"नौकरी करता हूँ, सरकारी।"

"कितना मिलता है।"

"तीन सौ के लगभग।"

"ठीक तो है। मुझे अपने साथ ले चलो। मैं इस नरक कुंड में एक क्षण भी नहीं रहना चाहती हूँ।"

नवल पर मानो किसी ने खौलते हुए पानी की बाल्टी उलट दी हो। बौखलाता हुआ बोला, "पर मेरी शादी ठीक हो गई है।"

कंचन मानो आसमान से गिरी हो, "तुमने कहा कि तुम शादी करने को तैयार न थे।"

"इस साल पिताजी ने जबर्दस्ती शादी तय कर दी और तिलक भी पिछले महीने हो गया। अब मैं क्या कर सकता हूँ?"

"तब" अपनी छलछलायी आँखों से नवल को देखती हुई कंचन बोली, "तो मेरी किस्मत में यही नरक बदा है।"

"दो वर्ष इस नरक में बिताने के बाद तुम और किस चीज की आशा करती हो?"

"और...और" आवेश में कंचन बोली, "अनेकों पुरुष जो इस नरक में आ मेरा चरण चूमते हैं उनके लिये समाज में स्थान सुरक्षित है।"

"स्त्री और पुरुष में कुछ अन्तर भी है कंचन देवी" दृढ़ स्वर में नवल बोला, "पुरुष स्त्री का सारा बोझ अपने ऊपर ले लेता है। इस लिये उसे अपने आराम-सुविधा का बहुत त्याग करना पड़ता है। वह ऐसा करता है क्योंकि वह समझता है कि पत्नी उसकी है उसकी संतान भी उसी की है। पत्नी यदि दूसरे पुरुषों से संतान उत्पन्न कराने लगे तो पति उसका बोझ क्यों उठायेगा। इसलिये पत्नी का पर पुरुष के पास जाना जितना बड़ा दोष है पति का अन्य स्त्री के पास जाना इतना बड़ा दोष नहीं; बशर्ते वह स्त्री किसी की पत्नी न होकर वेश्या हो। जब बच्चों के लालन-पालन का बोझ व्यक्ति पर न रह कर समाज पर हो जायगा

तो स्त्री पुरुष फिर पशु की तरह आजाद हो जायँगे और ये नियम खुद टूट जायँगे। अभी तो यह सब निभाना ही पड़ेगा।"

"और इसीलिए मेरा वेश्या बना रहना जरूरी है?" सिसकती हुई कंचन बोली।

"सो मैं नहीं कहता। पर अपनी मजबूरी मैंने बता दी।" और इतना कह नवल उठ खड़ा हुआ।

कंचन ने कस कर उसके चरण पकड़ लिये, "मुझे इस तरह मत छोड़ जाओ। मैं अच्छी पत्नी बनूँगी। विश्वास करो।"

"मेरी शादी तय हो चुकी" कंचन को उठाता हुआ नवल बोला, "तिलक हो चुका अब मेरा क्या अख्तियार है? मुझे जाने दो। देर हो रही है।"

"कुछ ठहरोगे भी नहीं?"

"क्या फायदा?" इतना कह उसने एक दफा कंचन की ओर देखा "कितना बदल गई है यह! तभी तो मैं पहचान नहीं सका" नवल ने सोचा। फिर दरवाजा खोल धीरे-धीरे कदम बढ़ाता हुआ बाहर की ओर चल दिया।

मर्माहत हो बुत बनी कंचन लौटते हुए नवल की ओर देखती रही। उसकी आँखें सूखी थीं मानो आँसू का भंडार भी उसने खो दिया हो।

—— o ——





बेटे की लाश उसे आसानी से मिल गई ।

जंगी वायुयान

धड़ाके की आवाज सुन बूढ़े का दिल भी धड़क उठा था। बाहर निकलने पर चारों ओर उसने घबराई हुई सूरतें देखीं। ऊपर जंगी वायुयान दूसरी ओर जाता नजर आ रहा था।

बूढ़े को ऐसा मालूम हुआ कि उसका हृदय सूखा जा रहा है। यहाँ तक कि उसकी व्याकुलता बढ़ने लगी। स्टेशन की ओर से आते हुए उसके एक दोस्त ने जो बातें कहीं उमसे उसके हृदय की शुष्कता और व्याकुलता सीमा तक पहुँच गयी।

सूने घर को यों ही खुला छोड़ वह स्टेशन की ओर भागा। कोई दूसरा मौका रहता तो लोग बूढ़े को इस तरह दौड़ता देख हँसी न रोक सकते। पर घटना की बात फैल चुकी थी, और सभी उसकी ओर दया और सहानुभूति भरी दृष्टि से देख रहे थे।

जिस वक्त वह स्टेशन पहुँचा, वह बहुत थक गया था और हाँफ रहा था। उसके ललाट पर वेदना की कई रेखायें खिंच आयी थीं।

बेटे की लाश उसे आसानी से मिल गई। उसके दिमाग में एक विचार आया। अगर उसे कोई मित्र बताता कि अमुक स्थान पर पत्थरों के बीच एक हीरा पड़ा है, और वह उसे ढूंढ़ने जाता तो क्या उतनी आसानी से हीरे को पा सकता? शायद नहीं, क्योंकि उस हीरे को पाकर उसे खुशी होती। और इस हीरे को ऐसी हालत में देखकर उसका

दिल निकला पड़ता है। और शायद भगवान चाहते हैं कि उसके जैसा आदमी हँसने का मौका नहीं ही पावे। इसका कारण यह हो सकता है कि जिसे वह खुश रखना चाहते हैं, उसकी खुशी के लिए ऐसे लोगों का दुखी होना जरूरी है। इन बेचारों के, "निर्धन को धन राम" है। खुश रहने वाले लोगों को इतना समय कहाँ कि राम का नाम लें।

बूढ़े ने स्टेशन का खंडहर देखा। अभी कुछ क्षण में उसकी यह हालत हो गई थी। कितने चाव और लगन से मजदूरों ने ईंट पर ईंट जोड़कर उसे खड़ा किया था। पर वे क्या जानें कि उन्हीं जैसा दो हाथ और दो पैर के जीव बेरहमी से उसे फिर जमीन में मिला देंगे। ईश्वर ने जमीन को जैसा बनाया है वैसी रहे। कोई क्यो इस पर ऊँचे महल और नीचे कुएँ खोदे? और किसी को ऐसा करने का अधिकार है तो दूसरों को फिर उसे ज्यों का त्यों बना देने का भी उतना ही अधिकार जरूर है। ईश्वर की आँखों में तो सभी बराबर हैं।

बूढ़े की आँखों के सामने पहले की कई घटनाएँ नाच गई। ये टूटी-फूटी लाइनें जब सीधी थीं, स्टेशन की गिरी हुई दिवालें खड़ी थी, और जब का मतलब ही क्या, अभी कुछ क्षण पहले तो यह दुरुस्त था। पर दो हाथ और दो पाँव के जन्तु हवाई जहाज लिये आये और ऐसा उजाड़ कर गये कि उन्हीं जैसे दो हाथ और दो पाँव के दूसरे जन्तु उसका व्यवहार न कर सकें। ऐसा करने में अगर दो हाथ और दो पाँव के कुछ जन्तुओं का बलिदान हुआ तो यह शुभ लक्षण ही है। ईश्वर तो हमेशा बलि से खुश होते हैं, और उस पर भी नरबलि। सोने में सुगन्ध।

इसी स्टेशन पर हर शनिबार को संध्या समय बूढ़ा मौजूद रहता था। सप्ताह भर बाद उसका पुत्र जो आने को रहता था। ट्रेन के रुकते

ही क्षण-भर पहले के निर्जन स्थान पर आदमियों की जो छोटी भीड़ लग जाती, उसमें आँख के कमजोर बूढ़े को अपने लड़के को ढूंढ़ने मे कुछ मुश्किल जरूर होती थी। पर शनिबार को उसका आना उतना ही जरूरी था जितना ट्रेन का पहुँचना। बाप-बेटे साथ-साथ घर लौटते। कालेज और होस्टल के सप्ताह के ताजे समाचार, नई पढ़ी किताबो और लेखकों की मजेदार बातें बाप को बताता और बाप सप्ताह भर की बातों की डायरी बेटे के सामने रखता, दोनो हँसते, आश्चर्य करते और कभी गंभीर हो जाते।

आज शनिबार था और आज भी अपने पुत्र से मिलने उसे स्टेशन जाना था।

पर पुत्र न मिला हो, सो बात नहीं। और दिनों की अपेक्षा बेटे को उसने आसानी से पा लिया। बिलकुल ताजी लाश तो थी। चेहरा विकृत हो गया था, और देखने से भय मालूम होता था। पर बूढ़ा लाश से लिपट गया, ऐसे प्रेम से बेटे को कभी उसने हृदय से न लगाया होगा। दूसरे ही क्षण उसने सोचा अच्छा होता मेरा बेटा आज नहीं आता। पर इतने ही में भयंकर कल्पना कर वह काँप उठा, फिर दोनो में भेंट कैसे होती? बूढ़ा स्टेशन जरूर पहुँचा होता और उसे जरूर मरना पड़ता। फिर उसने सोचा, ऐसा मिलने से तो अच्छा था कि हम नहीं ही मिलते। उसने सोचा अगर वह ठीक समय पर स्टेशन आता और मर जाता तो बेटा बच जाता। पर ईश्वर की जैसी इच्छा। शायद हम दोनों में से किसी एक का मरना जरूरी था।

बूढ़े के दिमाग के पुर्जे जैसे तेजी से घूम गये। वह उठा, उसने चारो ओर देखा और चक्कर खाकर लाश पर गिर पड़ा। उसकी आँखें सूखी थीं पर चेहरे पर एक तरह की मुर्दनी छा गयी थी।

बूढ़े के दिमाग में अचानक एक सवाल आ घुसा । इस लड़के के बिना क्या वह जी सकेगा ? कैसे कटेंगे उसके दिन ? सप्ताह-भर वह किसकी प्रतीक्षा करेगा, आठवें दिन स्टेशन पर किसे लेने वह जायगा ?

आह, वह स्टेशन भी तो न रहा, फिर उसका लड़का ही कैसे रहता ? ईश्वर इतना बड़ा अन्याय कैसे होने देते ?

तर्क लगाने पर उसे यही अनुभव हुआ कि एक जिन्दगी का उसके परिवार से जाना जरूरी था । पर आखिर उसके परिवार में था ही कौन ? वह और उसकी पत्नी की अकेली यादगारी। वह मरता तो उसकी भी यादगार वह बच्चा रहता ।

पर अब न उसकी स्वर्गीय पत्नी की, न उसकी, किसी की याद-गार न रही । नहीं, नहीं उसका मरना ज्यादा अच्छा होता । उसकी यादगार तो रह जाती ।

पर अब तो यादगार लौट नहीं सकती । भगवान इस तरह का सौदा नहीं करते फिर उसका जीना भी बेकार ही है । उसने आकाश की ओर देखा और कहा—भगवान, मुझे भी अपने बेटे के पास बुला लो ।

इसी समय जंगी वायुयान की आवाज आयी । वही वायुयान लौट रहा था । बूढ़े को लगा जैसे ईश्वर ने उसकी प्रार्थना मान ली । वह आँखें बन्द कर लाश पर झुक गया । एक दफा वह काँप उठा । धड़ाके की आवाज हुई और एक दफा वह सिहर उठा । पर उसने जब आँखें खोलीं तो कुछ दूरी पर धुंआ उड़ रहा था, उधर जंगी वायुयान गुजर रहा था ।

—o—

अत्यन्त रोचक और कलापूर्ण
कहानियों का अपूर्व संग्रह

प्रेत की छाया

नौ कहानियाँ, पृष्ठ १३४, मूल्य १।।)

लेखक

ज्योतीन्द्र नाथ

पाठकों, लेखकों, विद्वानों और आलोचकों द्वारा समान रूप से प्रशंसित सम्मतियाँ अगले पृष्ठों पर पढ़ें।

पाठक अपनी प्रति के लिए और
विक्रेता एजेन्सी के नियमों के
लिये नीचे पते पर लिखें—

अरुण पुस्तकालय
C/o श्री सुरेन्द्र नारायण झा
वकील
वलभद्र पुर
पो०—लहेरियासराय

राजेन्द्र प्रकाशन
C/o श्री राजेन्द्रनाथ
भँवर पोखर
पटना—४

श्री ७ की प्रेत की छाया मैं ध्यानपूर्वक पढ़ गया इस संग्रह की कहानियों में अपूर्व कथारस और प्रवाह है। आज की कहानियाँ अधिक उलझी हुई और विचार-बोझिल हो गई है, इनकी कहानियाँ इन प्रवृत्तियों से सर्वथा मुक्त हैं। इनमें अपने ढंग की सादगी और प्रत्यक्ष प्रभाव उत्पन्न करने की क्षमता है, जिससे पाठक और लेखक में अनायास तादात्म्य स्थापित हो जाता है। इन कहानियों की सरसता, सरलता और संवेदनशीलता ने मुझे मुग्ध कर लिया। इनके उज्ज्वल भविष्य और सफलता में मुझे पूर्ण आस्था है।

रामखेलावन पाण्डेय, एम०ए०
डी० लिट्
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
पटना विश्वविद्यालय

प्रेत की छाया पढ़ कर लगा, बहुत दिनों के बाद सुन्दर कहानियों का संग्रह पढ़ने को मिला है। जैसा कि वर्षा के प्रारम्भ में आकाश पर मेघों की टोली महत्त्वपूर्ण हुआ करती है, वैसे ही प्रेत की छाया भी साहित्य के विशाल प्रांगण में एक महत्ता रखेगी ऐसा मेरा विश्वास है। मेरे दृष्टिकोण से इस तरुण तथा नवीन कलाकार की कला में 'मां का हृदय' कहानी हिन्दी साहित्य में अपना एक अचल और अटल स्थान बना लेगी। यूं प्रेत की छाया आदि भी भली तथा सुन्दर हैं ही।

उषादेवी मित्रा

हिन्दी के प्रतिभाशाली कथाकार श्री ज्योतीन्द्रनाथ के कहानी-संग्रह प्रेत की छाया में आधुनिक कहानी कला और उसके शिल्प की मनोरम झाँकी दर्शनीय है। पाठकों की उत्सुकता अन्त तक बनाये रखने में कथाकार की सफलता श्लाघ्य है।

देवीदयाल चतुर्वेदी
सम्पादक, सरस्वती

तीस दिन, स्मृति के आँसू और इलाज शीर्षक कहानियाँ मैं कल ही पढ़ गया और इन सफल कहानियों पर मै आपको बधाई देता हूँ ।

अमरनाथ झा

कहानियाँ बड़ी रोचक और संयत ढंग से लिखी गई हैं । आशा है मेरी ही तरह पाठकों का वह मनोरंजन करने में सफल होगी ।

राहुल सांकृत्यायन

कहानियाँ सभी दृष्टियों से कलात्मक, सजीव, आकर्षक और संवेदनशील हैं । कहानीकार की कला-कुशलता को देखकर हिन्दी साहित्य को उनसे बहुत आशाएँ हैं ।

विश्वनाथ प्रसाद,

अध्यक्ष हिन्दी विभाग, पटना विश्वविद्यालय

बधाई है श्री ज्योतीन्द्रनाथ को, जिन्होंने इस कहानी संग्रह से अच्छा प्रभाव उत्पन्न किया है । ऐसा लगता है कि वे कथा-साहित्य में विशेष व्यक्तित्व लेकर आ रहे हैं । माँ का हृदय, तीस दिन, स्मृति के आँसू, इलाज इत्यादि कहानियाँ काफी सफल हैं । शिल्प में सादगी होते हुए भी प्रभावोत्पादकता है । बड़ी स्वाभाविकता और सहजता है इन कहानियों में । इस लेखक से हिन्दी-कथा साहित्य को बड़ी-बड़ी आशायें हैं ।

पाटल, पटना ।

I found the stories really interesting and was struck with the facility with which you wield your pen. I am sorry I am no judge for Hindi language though one can feel you have perfect command over it. Personally as a Bengali reader, I would have been more at home if it had been a little more allied to Sanskrit. Incidentally, I may also give it as my opinion that if Hindi writers take more kindly to that style, the Indian language may come nearer to one other.

You really have the makings of a good writer. From the varieties of subjects that you have touched, and with credit too, it is evident, you have eyes to see the world

and you keep them open and alert. Your sympathies too, are wide and Catholic.

—*Bibhuti Bhusan Mukerji*
(विभूतिभूषण मुकर्जी)
बंगला के प्रमुख कहानीकार

The Stories are well written and interesting. All the elements of good stories are to be found. The writer has complete command over language and has the capacity to express himself in simple but graceful style. The stories are absorbing and still so true to life. They are fine specimen of Psycho-analysis of characters. Subject matter of the stories is rich in variety and the capacity of the writer to deal with them has been proved beyond doubt. The collection will surely earn for the writer a prominent place in the galaxy of Hindi short story writers.

The writer captures the imagination of the reader and then convey his message without making the reader conscious of it. In *Pret-ki-Chaya* the writer has with great success followed the typical Western Style which keeps the readers spell bound till the last sentence of the story and then the readers feel that they have heard something astounding. This delightful collection will no doubt be well received by literary critics and the reading public.

—*Indian Nation, Patna.*
9. 5. '54.

कहानियाँ बहुत अच्छी लगीं। कहानी के सभी तत्त्व उनमें हैं। भाषा भी बड़ी अच्छी है। मैं आशा करता हूँ आपके द्वारा बिहार के कहानी-साहित्य भंडार में अच्छी अभिवृद्धि होगी।

—श्री रामवृक्ष बेनीपुरी

श्री   हिन्दी कथासाहित्य म अपनी प्रतिभा का परिचय दे रहे हैं। कहानियाँ सभी तरह से कथा-प्रेमियों का मनोरंजन करनेवाली हैं। प्रायः सभी कहानियों में सरसता और संवेदनशीलता ओत-प्रोत है। आधुनिक कहानी-कला और उसके शिल्प की मनोरम झाँकी इस संग्रह में सुलभ है।

—सरस्वती, प्रयाग।

कहानियाँ पढने से उसकी कलात्मक एवं विवेचनात्मक प्रवृत्तियों का पता लग जाता है। भाषा में सादगी और प्रवाह, संवाद में स्वाभाविकता, चरित्र-चित्रण में मनोवैज्ञानिकता स्पष्ट दिखाई पड़ती है। कहानियाँ इतनी रोचक हुई है कि पाठकों की उत्सुकता अंत तक कायम रहती है।

प्रेत की छाया घटनापूर्ण कहानी है, और इसमें सन्देह नहीं कि इस तरह की कहानी बहुत कम पढ़ने को मिलती है। कलारूपी वरदान भी निरंकुशता के प्रभाव में पड़कर किस तरह अभिशाप बन जाती है इसे लेखक ने बहुत खूबी से दिखलाया है। आनन्द का चरित्र-चित्रण सजीव और प्रभावपूर्ण है। स्मृति के आँसू इतना करुण है कि यह पाठको को बरबस द्रवित कर देता है। इसमें सतीश का मनोवैज्ञानिक चित्रण बहुत ही सुन्दर हुआ है। कहानी के अंत में सतीश का संवाद दिल को छूनेवाला है। तीस दिन में कहानी कहने का टेकनिक स्वाभाविक होने के कारण बहुत प्रभावोत्पादक हो गया है। सुधा की नादानी पर कटाक्ष करते हुए भी लेखक ने जिस सहानुभूति के साथ उसका चरित्र-चित्रण किया है, वह उसके हृदय की विशालता का परिचय ही है। मन का दोष भी इसी कोटि की कहानी है। अजीत हृदय की उदारता के बावजूद मानव हृदय की स्वभाविक कमजोरी का शिकार बन जाता है। फिर भी अजीत का चरित्र-चित्रण सहानुभूति के साथ किया गया है। स्मृति के आँसू जैसी करुण कहानी लिखनेवाला लेखक इलाज जैसी विनोदपूर्ण कहानी मे हास्य का जबर्दस्त पुट दे सकता है, यह लेखक की बहुमुखी प्रतिभा का ही परिचायक है। फिर उसी लेखक ने माँ का हृदय में तारा जैसी

तेजस्वी महिला का चरित्र चित्रण किया है जो स्वाभाविक होते हुए भी कितना विचित्र है। पुस्तक संग्रहणीय है एवं पठनीय है।

आर्यावर्त, पटना
९—५—५४

लेखक ने कई कहानियों में पाश्चात्य शैली को अपनाया है। कहानी-कला की एक विशेषता है पाठकों की उत्सुकता को अंत तक बनाये रखना। यह विशेषता संग्रह की कई कहानियों में पाई जाती है। प्रेत की छाया इसी प्रकार की एक कहानी है। स्मृति के आँसू में मनोवैज्ञानिक चित्रण सुन्दर रूप में हुआ है। भाषा सरल एवं प्रवाहपूर्ण है और कथोपकथन मे स्वाभाविकता है।

—जगन्नाथ प्रसाद मिश्र, एम० एल० सी०

संग्रह की सभी कहानियाँ पठनीय हैं। हर कहानी शुरू करके बिना किसी तरदुद के अंत तक पढ़ी जा सकती हैं, ऐसा कथाप्रवाह और रस है इन कहानियों में। बड़ी ही सीधेसाधे ढंग से लेखक कहानी कहता है। कहीं भी दुरूहता या पेचीदगी नहीं है। भाषा भी शैली के ही अनुसार सरल है।

पाठकों से हमारा आग्रह है कि वे इस सुन्दर कहानी संग्रह का सम्मान करें।

—कहानी, प्रयाग

न्याय का एक दिन और संघर्ष शीर्षक कहानियाँ......उद्धरण जैसी लगती हैं। इन उद्धरण मूलक कहानियों में भी लेखक का चिंतन-प्रधान व्यक्तित्व निखर पड़ा है।....कहानियाँ कल्पनात्मक ही नही, बल्कि वास्तव लोक के वास्तव जीवन से संबद्ध हैं। इसलिए इनमें आई घटनाएँ रोजबरोज की, पास-पड़ोस की घटनाओं सी लगती हैं।.... लेखक का प्रथम प्रयास काफी सफल रहा है।

—अवन्तिका, पटना